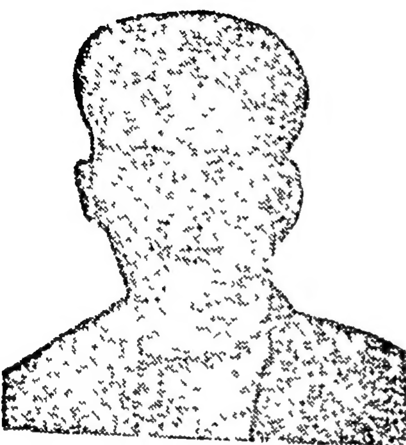
पहला सस्करण
फरवरी १९६८

लेखक
विष्णु प्रभाकर

मूल्य २ रुपये ५० पैसे

प्रिंटिंग प्रेस, रानी झासी रोड, नई दिल्ली मे डी पी. सिनहा
द्रित और उन्ही के द्वारा पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा) लिमिटेड,
रानी झासी रोड, नई दिल्ली, की तरफ से प्रकाशित ।



बंकिमचन्द्र

वन्दे मातरम्

सुजलां सुफलां मलयज-शीतलां,
शस्य श्यामलां मातरम् ।
शुभ्र ज्योत्स्ना पुलकित यामिनीम्,
फुल्ल कुसुमित द्रुमदल शोभिनीम्
सुहासिनीं सुमधुर भाषिणीम्,
सुखदां वरदां मातरम् ॥
सप्तकोटि कण्ठ कलकल-निनाद कराले,
द्विसप्तकोटि-भुजे धृत खर करवाले,
के बले मा तुमि अबले ।
बहुबल, धारिणीं नमामि तारिणीं
रिपुदल वारिणीं मातरम् ॥
तुमि विद्या तुमि धर्म,
तुमि हृदि तुमि मर्म,
त्वं हि प्राणाः शरीरे ।
बाहुते तुमि मा शक्ति,
हृदये तुमि मा भक्ति
तोमारइ प्रतिमा गडि, मन्दिरे मन्दिरे ।
त्वं हि दुर्गा दशप्रहरण-धारिणी,
कमला-कमल-दल विहारिणी,
वाणी विद्यादायिनी, नमामि त्वां ।
नमामि कमलां अमलां अतुलां,
सुजलां सुफलां मातरम्,
वन्दे मातरम् ।
श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषितां,
धरणीं भरणीं मातरम् ॥

एक

भारत १५ अगस्त सन् १९४७ को आजाद हुआ। आजादी की यह लड़ाई सन् १८५७ में शुरू हुई थी।

धीरे-धीरे यह लड़ाई बढ़ती रही। बंगाल में कुछ तेज थी। सन् १९०५ में इसे दबाने के लिए लार्ड कर्जन ने एक चाल चली। उसने शासन की सुविधा का बहाना करके बंगाल के दो टुकड़े कर दिये।

लेकिन इससे क्या क्रान्ति दबी ?

नही। वह तो और भी दुगने वेग से फूट पड़ी। बंगाल का दबा हुआ क्रोध उबल पड़ा। लोग विद्रोह करने लगे। उन पर जुल्म होते, लेकिन वे उफ तक न करते। वे कोडे खाते, लाठियां खाते, मर जाते, लेकिन 'वन्दे मातरम्' पुकारते रहते।

आइए ऐसा ही एक दृश्य हम भी देखे। एक स्थान पर भीड इकट्ठी है और एक व्यक्ति उसके सामने भाषण दे रहा है।

व्यक्ति अंग्रेज सरकार ने हमारे सोने के बंगाल को काट डाला है। शासन मे सुविधा की बात झूठी

है। वह राष्ट्रीयता को कुचलने का बहाना है। वह एक भाग मे मुसलमानो का और दूसरे मैं बिहारी और उड़ियों का बहुमत करके हमें आपस में लड़ाना चाहती है। लेकिन हम ऐसा नही होने देगे। हम अपने देश को प्यार करते है।

भीड़ : हम अपने देश के लिए जान दे देंगे।

व्यक्ति : शाबास भाइयो। अपनी शक्ति को बढ़ाओ और विदेशी वस्तुओं का बायकाट करो।

भीड़ : हम तैयार है। हम प्रतिज्ञा करते है कि हम किसी भी विदेशी वस्तु का प्रयोग नही करेंगे।

व्यक्ति : सरकार ने 'वन्दे मातरम्' का पुकारना अपराध ठहराया है। आप सब एक स्वर में पुकारो : 'वन्दे मातरम्'।

भीड़ : वन्दे मातरम्।

(पुलिस का प्रवेश)

पुलिस अफसर मै आप लोगो से कहता हूँ 'वन्दे मातरम्' कहना कानून की दृष्टि से अपराध है।

व्यक्ति 'वन्दे मातरम्' कहना अपराध है? मां को प्रणाम करना अपराध है? साथियो, सुना आपने? 'वन्दे मातरम्' कहने से शांति भंग होती है! मां को

प्रणाम करने से शांति भंग होती है ! साथियो, पुकारो तो . . . .

भीड वन्दे मातरम् ।

पुलिस अफसर . (क्रुद्ध) तुम नहीं मानोगे ? मैं कहता हूँ तुम सब चुपचाप चले जाओ ?

भीड़ : वन्दे मातरम् ।

पुलिस अफसर : नही मानोगे ? सिपाहियो, इस नेता को गिरफ्तार कर लो और इन्हे भगा दो ।

भीड़ : वन्दे मातरम् (शोर । लाठियां चलती है । 'वन्दे मातरम्' के स्वर उठते है और मिटते हैं । केवल एक स्वर उठता रहता है ।)

पुलिस अफसर : क्या देखते हो ? लाठियों से सिर फोड़ दो ।

युवक . वन्दे मातरम् ।

सुजला सुफलां मलयज-शीतलां,
शस्यश्यामलां मातरम् ।
शुभ्र-ज्योत्स्ना-पुलकित-यामिनी,
फुल्लकुसुमित द्रुमदल शोभिनीम् ॥

पुलिस अफसर . मै कहता हूँ बन्द करो यह गीत, अभी बन्द करो . .

युवक · सुहासिनी सुमधुर भाषिणीम्,

सुखदां वरदाम् मातरम् ।

पुलिस अफसर · नही सुनते ?

युवक : त्रिशकोटि-कठ-कलकल-निनाद कराले,
द्वित्रिशकोटि-भुजे धृत खर करवाले ।

पुलिस : नही वन्द करता ? मारो इसके कोड़े । देखते क्या हो ? (कोडो का स्वर उठता रहता है, युवक गाता रहता है ।)

युवक : के वले मा तुमि अवले ।
वहु वल धारिणी, नमामि तारिणी
रिपुदल वारिणी, मातरम ॥

पुलिस अफसर : लगाये जाओ । जव तक वन्द न हो, कोड़े लगाये जाओ । (कोड़े पडते रहते हैं, गीत के स्वर बढ़ते है, सामूहिक गान उठता है ।)

समवेत स्वर : तुमि विद्या, तुमि धर्म,
तुमि हृदि, तुमि मर्म,
त्व हि प्राणा : शरीरे ।
वाहुते तुमि मा शक्ति,
हृदये तुमि मा भक्ति,
तोमारइ प्रतिमा गड़ि
मन्दिरे मन्दिरे ।
वन्दे मातरम् ।

इस 'वन्दे मातरम्' गीत ने आजादी की लडाई में कितना योग दिया यह इस देश का बच्चा-बच्चा जानता है। इसको लेकर नये-नये गीत रचे गये .

शुद्ध सुन्दर अति मनोहर मन्त्र वन्दे मातरम्,
मृदुल सुखकर दुःखहारी मन्त्र वन्दे मातरम्,
मन्त्र यह है, तन्त्र यह है. जन्त्र वन्दे मातरम्,
सिद्धिदायक, बुद्धिदायक, एक वन्दे मातरम् ।

आज भी जब हमारा देश आजाद हो गया है यह गीत 'भारत भाग्य विधाता' के साथ-साथ भारत का 'राष्ट्रीय गीत' माना जाता है।

जानते हो, यह गीत किसने लिखा था ? इसे लिखा था—श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने ।

आप पूछेंगे, कौन बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ? तो सुनिए . . . .

दो

बंकिमचद्र चट्टोपाध्याय बगाल के बहुत बडे लेखक थे। उन्होने बहुत से उपन्यास लिखे।

उनमें एक उपन्यास है 'आनन्दमठ'। इसी उपन्यास में वह गीत आता है जो तुमने अभी पढ़ा है। देशभक्ति की भावना जगाने के लिए यह उपन्यास बहुत प्रसिद्ध है। इस उपन्यास के कारण उन्हे राष्ट्र निर्माता और ऋषि कहते है।

जिस समय उन्होंने यह उपन्यास लिखा था, उस समय देश की हालत बहुत अच्छी नही थी। भारत एक नही था। सभी अपने-अपने स्वार्थ के पीछे दौड़ रहे थे। मुगल, मराठे सब खत्म हो चुके थे, अंग्रेज जमे नही थे। ऐसे समय उन्होंने स्वार्थ से ऊपर उठ कर संगठन और देशभक्ति की आवाज उठाई। इस उपन्यास मे 'संतान सम्प्रदाय' के विद्रोह की कहानी है।

कहते है कि अठारहवी सदी मे किसी समय देश मे बडा अकाल पडा था। किसी को खाना तक नही मिलता था। तब 'सतान सम्प्रदाय' के साधुओं ने बहुत

लूटमार मचायी थी। असल मैं वे डाकू थे। इसी कहानी को लेकर बकिमचन्द्र ने 'आनन्दमठ' लिखा।

लेकिन 'आनन्दमठ' का 'संतान सम्प्रदाय' डाकू नही है। वह एक आदर्शवादी सुसंगठित दल है। उसका स्वार्थ यदि कुछ है तो वह विशुद्ध देशप्रेम है। इतिहास मे जिस 'संतान सम्प्रदाय' का पता लगता है उसकी लूट-खसोट के पीछे कोई राजनीतिक उद्देश्य नही था। लेकिन बंकिमचन्द्र के सामने राजनीतिक उद्देश्य था।

१८५७ के विद्रोह की याद अभी ताजा थी। अंग्रेजों ने जिस प्रकार उसका दमन किया था उसकी याद भी ताजा थी। लोग जैसे डर गये थे। उनमैं आत्मसम्मान और आत्मगौरव जगाने के लिए बंकिम-चन्द्र ने इस उपन्यास की रचना की। उसका उद्देश्य राजा के अत्याचार का विरोध करना है। उपन्यास के जिस परिच्छेद मैं इसकी चर्चा आती है उसे देखिए।

"उस चांदनी रात मे दो व्यक्ति चुपचाप मैदान को पार कर चलने लगे। महेन्द्र मौन, शोक से कातर, गर्वित, कुछ-कुछ कौतूहल से भरे हुए थे। भवानन्द ने सहसा दूसरा रूप धारण कर लिया था। वह अब स्थिर-मूर्ति, धीर प्रकृति के सन्यासी रही रहे थे। रण-निपुण, वीर-मूर्ति, सिर काटने वाले सेनाध्यक्ष भी नही

थे। अभी-अभी गर्व से भर कर महेंद्र का जो तिरस्कार उन्होने किया था, वह रूप भी उनका नहीं रहा था। मानो शान्त चादनी से छाई प्रकृति की शोभा देखकर उनके चित्त मे विशेष स्फूर्ति जाग उठी। मानो चन्द्रोदय के कारण समुद्र मुस्कराने लगा। भवानन्द हसमुख, वाक्पटु और मिष्ठ भाषी हो उठे। बातचीत करने के लिए बडे व्यग्र थे। उन्होने महेन्द्र से बात करने के बहुत प्रयत्न किये। लेकिन महेन्द्र चुप ही रहे। तब निरुपाय होकर उन्होने धीमे स्वर मे गीत गाना आरम्भ किया :

वन्दे मातरम् ।
सुजलाम् सुफलाम् मलयज शीतलाम्,
शस्य श्यामलाम् मातरम् ।

महेन्द्र गीत सुनकर कुछ विस्मित हुआ। समझ नही पाया 'सुजला सुफला मलयज शीतला शस्य श्यामला' माता कौन है ? पूछा : कौन-सी माता ?

भवानन्द ने कोई उत्तर नही दिया। वह पहले की तरह गाते रहे—

शुभ्र-ज्योत्स्ना पुलकित-यामिनी
फुल्लकुसुमित द्रुमदल शोभिनीम् ।

सुहासिनीम् सुमधुर भाषिणीम्,
सुखदाम् वरदाम् मातरम् ।
वन्दे मातरम् ।

महेन्द्र बोले · यह तो देश का वर्णन है, माता का नही ?

भवानन्द ने उत्तर दिया : हम किसी दूसरो माता को नही जानते ? जन्मभूमि ही हम लोगो की मा है । हमारी दूसरी कोई मां नही, बाप नही, भाई नही, बन्धु नही, स्त्री नही, पुत्र नही, घर-बार नही । हमारे पास केवल वही 'सुजला सुफला मलयज शीतला शस्य श्यामला' ··

समझ कर महेन्द्र ने कहा : अच्छा एक बार फिर तो गाओ ।

भवानन्द ने फिर गाया ।

महेन्द्र ने देखा, गाते गाते डाकू रोने लगा । अचरज से भरकर उन्होने पूछा तुम कौन हो ?

भवानन्द वोला हम सतान है ।

महेन्द्र : सतान कौन, किसकी सतान ?

भवानन्द · मा की सतान ।

महेन्द्र अच्छा सतान क्या चोरी-डाके से मां की पूजा किया करती है ? यह कैसी मातृभक्ति है ?

भवानन्द : हम चोरी-डाका नही डालते ।

महेन्द्र : तुमने गाड़ी लूटी है ।

भवानन्द : वह क्या चोरी डाका है ? हमने किसका रुपया लूटा है ?

महेन्द्र : क्यो ? राजा का ।

भवानन्द : राजा का ? यह जो रुपये वह लेगा उस पर उसका क्या अधिकार है ?

महेन्द्र : राजा का राजभाग है वह ?

भवानन्द : जो राजा राज्य का पालन नही करता वह राजा कैसा ?

कहानी बहुत लम्बी है, लेकिन इससे स्पष्ट है कि यह गीत किसी जाति के खिलाफ नही लिखा गया है, अत्याचारी राजा के खिलाफ लिखा गया है । संयोग की बात है कि तब मुसलमान राजा थे । वैसे इसमें संन्यासियों ने दो बार अंग्रेजो को भी हराया है । और फिर जब अंग्रेज राजा हुए और उन्होने जुल्म किया तो देशवासियों ने यह गीत गा-गाकर उनके खिलाफ लड़ाई लड़ी ।

'वन्दे मातरम्' आजादी की लड़ाई का नारा बन गया ।

कोई-सा भी राजनीतिक आन्दोलन हो—सभी ने इससे प्रेरणा पायी । कहते हैं कि समाज पर सबसे

अधिक प्रभाव धर्म-ग्रन्थों का पड़ता है। परन्तु 'आनन्द-मठ' उनसे भी बढ़ गया। उसने देशप्रेम को ही धर्म बना दिया। दुनिया के इतिहास में शायद यही एक उपन्यास है जिसका गीत समूचे राष्ट्र का गीत बन गया है।

ऐसी पुस्तक और ऐसा गीत जिस व्यक्ति ने लिखा हो, उसका जितना सम्मान किया जाय थोड़ा है। जो जाति पैरो के नीचे रौदी जा रही थी, उसको जगा कर उन्होने खड़ा कर दिया। त्याग और साधना का एक जीता-जागता चित्र उसके सामने खीच दिया। उन्ही के मार्ग पर चलकर, उन्हीं के गीत को गा-गाकर, हम आजाद हुए।

उन्होंने और भी बहुत कुछ लिखा है। चाहे कहानी चाहे हंसी की बात हो, देश को वह कभी नही भूले। उनकी एक किताब है—'कमलाकान्त का दफ्तर'। पढ़ो तो हसी के मारे पेट फट जाय। एक बार कमला-कान्त गवाही देने के लिए अदालत में गये। कोई चोर प्रसन्न ग्वालिन की गाय चुरा ले गया था, उसी का मुकदमा था। कमलाकान्त उस गाय का दूध पीते थे। इसलिए प्रसन्न ने उन्हे गवाही देने के लिए बुलाया। बड़े मजेदार गवाही है वह। पूरी तो हम नही दे सकते, लेकिन उसका एक भाग सुनिए।

वकील ने पूछा : तुम्हारा निवास कहां है ?

कमला : मेरा कोई निवास नही है ।

वकील : पूछता हूँ, मकान कहा है ?

कमला : मकान की बात दूर रही, मेरी अपनी एक कोठरी भी नही है ।

वकील : तो तुम कहां रहते हो ?

कमला जहा-तहा, इधर-उधर ।

वकील . कोई एक अड्डा तो है ?

कमला : था, जब नसी बाबू थे । अब कही नहीं है ।

वकील इस समय तुम कहा ठहरे हो ?

कमला : क्यो, इसी अदालत में ।

वकील : कल तुम कहां थे ?

कमला एक दूकान मे ।

हाकिम ने कहा . अब बकझक करने-कराने की जरूरत नही है । मै लिख देता हू निवास नही है ।

उसके बाद ।

वकील तुम्हारा पेशा क्या है ?

कमला मेरा पेशा क्या ? मै क्या वकील हूँ, या वेश्या हूं कि मेरा पेशा हो ?

वकील . पूछता हू, खाते हो क्या करके ?

कमला भात के साथ दाल मिलाकर, दायें हाथ से कौर उठाकर, मुह मे डालकर निगल जाता हूं ।

वकील : वह दाल-भात आता कहा से है ?

कमला : भगवान के देने से ही मिल जाता है, नही तो नही मिलता ।

वकील : कितना कमाते हो ?

कमला : एक पैसा भी नही ।

वकील . तो क्या चोरी करते हो ?

कमला : ऐसा होता तो इसके पहले ही आपकी शरणागत हो जाना पड़ता ; आपको कुछ हिस्सा भी मिलता ।

वकील ने यह दायित्व छोडकर हाकिम से कहा : मै यह साक्षी नही चाहता । मै इसकी जबानबदी नही करा सकता ।

वादिनी प्रसन्न ने वकील की कमर पकड़ ली । बोली · इस साक्षी को छोडा न जायेगा । यह ब्राह्मण सच बात कहेगा, यह मैं जानती हूँ—यह कभी झूठ नही बोलता । उससे तुम लोग पूछना नही जानते, इसलिए वह ऐसा कर रहा है । उस ब्राह्मण का पेशा क्या होगा ? वह इस घर मे, उस घर मे जाकर खाता फिरता है । उससे पूछ रहे हो, उपार्जन क्या करते हो । वह क्या बताये ?

वकील ने तब हाकिम से कहा . लिख लीजिए, पेशा भिक्षा ।

इस बार कमलाकांत क्रुद्ध हो गया। बोला : क्या ? कमलाकांत चक्रवर्ती भिक्षा से जीविका अर्जन करता है ? मै मुक्त कण्ठ से शपथ खाकर कहता हूँ, मै कभी किसी से एक पैसा भी भीख नही मांगता।

प्रसन्न अब चुप न रह सकी। उसने कहा : यह क्या महाराज। क्या कभी अफीम मांग कर तुमने नही खायी ?

कमला : हट। बेहूदी। बेवकूफ ग्वाले की लडकी। अफीम क्या पैसा है ? मैने कभी एक पैसा भी किसी से भिक्षा में नही मांगा है।

हाकिम ने हस कर कहा : मैं क्या लिखूं, कमलाकांत ?

कमलाकांत ने नरम होकर कहा : लिखिए, पेशा है ब्रह्मभोज का, निमंत्रण-ग्रहण।

सभी हंस पड़े। हाकिम ने यही लिख लिया।

तब वकील साहब मुकदमे पर पहुँच गये।

उन्होने पूछा : तुम क्या फरियादी को पहचानते हो ?

कमला : नही।

प्रसन्न चिल्ला उठी : यह क्या महाराज ! हमेशा तुम मेरा ही दूध पीते रहे हो, आज कहते हो कि मै नही पहचानता ?

कमलाकांत ने कहा : तुम्हारा दूध दही मै नही पहचानता, ऐसी बात तो मै नही कहता। तुम्हारा दूध-दही अच्छी तरह पहचानता हूँ। जब मै देखता हूँ कि एक पाव दूध में तीन पाव जल है, तभी मै पहचान जाता हूं कि यह प्रसन्न ग्वालिन का दूध है। जब मै देखता हू कि मट्ठे की अपेक्षा दही फीका है, तभी मै समझ जाता हू कि यह प्रसन्नमयी का दही है। भला दूध-दही मै नही पहचानता ?

तो देखा आपने कि हंसी-हसी में ही बंकिमचन्द्र ने समाज मे फैले भ्रष्टाचार पर कैसी चोट की है। और यही क्यो। उन्होने इसी तरह एक निबन्ध लिखा है 'बाबू' पर। सुनिए ·

"जनमेजय बोले—हे महर्षि, आपने कहा है कि कलियुग मे बाबू नामक एक तरह के मनुष्य धरती पर पैदा होंगे। यह कैसे होगे और क्या करेगे यह सुनने के लिए मै उत्सुक हो रहा हू। आप कृपा कर विस्तार से बताइये।

वैशम्पायन ने कहा—हे राजन् !······विचित्र बुद्धिवाले बाबुओं की कथा कहता हूँ, आप सुने ! मै चश्माधारी, उदार चरित्र, बहुत बोलने वाले, मिठाई

के प्रेमी, बाबुओ का चरित्र वर्णन करता हूँ। आप सुने ! हे राजन्, जो चित्र-विचित्र कपडे पहने हो, हाथ मे बेत लिये हो, बाल संवारे हो और बूट चढ़ाये हो वही बाबू है। जो बातो मे हारे नही, परायी भाषा मे पारदर्शी हो, मातृभाषा का विरोधी हो, वही बाबू है। महाराज, बहुत से महा बुद्धिमान बाबू उत्पन्न होंगे जो मातृभाषा मे बातचीत न कर सकेंगे।...जिनके हाथ दुबले और कमजोर होने पर भी कलम पकड़ने और तनख्वाह लेने में चतुर है, चमड़ा मुलायम होने पर भी सात समुद्र पार की बनी वस्तु की चोट सहने मे समर्थ है, वही बाबू है। जो उद्देश्य के बिना धन जमा करे, जमा करने के लिए पैदा करे, पैदा करने के लिए पढ़े और पढ़ने के लिए प्रश्न चोरी करे, वही बाबू है।..."

बाबू के और भी बहुत से गुणों का उन्होने बखान किया है, लेकिन हमारे लिए इतने ही काफी है। आज भी ऐसे बाबुओ की कमी नही है जो अपने देश की भाषा और अपने देश में बनी वस्तुओं से नफरत करते हैं। बकिमचन्द्र ने इन बातों को लगभग सौ वर्ष पहले ही पहचान लिया था। ऐसे दूरदर्शी लोगो को ही तो ऋषि कहते है।

वकिमचन्द्र ने केवल ये बाते लिखी ही नहीं है, अपने जीवन में इन बातो पर अमल भी किया है। वह डिप्टी मजिस्ट्रेट और डिप्टी कलेक्टर रहे। कानून और न्याय के क्षेत्र मे उन्होने जीवन खपा दिया। लेकिन वहां भी वह अंग्रेजों से नही दबे।

एक अंग्रेज मजिस्ट्रेट ने एक बार उन्हें भरी अदालत में 'वकिम' 'वकिम' कहकर पुकारा। धमकाने की कोशिश भी की। वह समझता था कि बकिमचन्द्र डिप्टी मजिस्ट्रेट है तो क्या, है तो आखिर हिन्दुस्तानी ही। और हिन्दुस्तानी को धमकाने का अंग्रेज का जन्म सिद्ध अधिकार है।

लेकिन बकिमचन्द्र क्या ऐसे-वैसे हिन्दुस्तानी थे ? क्रोध मे भर कर उन्होने कहा, "आपको मालूम होना चाहिए कि मै इस समय वकिम नही हूँ। मै साम्राज्ञी के कानून और न्याय का प्रतिनिधि हूँ। आपको जानना चाहिए कि मै इसी वक्त आपकी गिरफ्तारी का हुक्म दे सकता हू और साम्राज्ञी के न्यायालय का अपमान करने के अपराध मे दण्ड दे सकता हूँ।"

बात चाहे कितनी ही कडवी थी, पर थी सच। सुन कर अंग्रेज मजिस्ट्रेट हैरान रह गया और वहा से चला गया।

ऐसी ही एक और घटना है। एक बार मजिस्ट्रेट साहब ने हुक्म दिया कि किसी भी मुकदमे में एक रुपए से कम जुर्माना न किया जाय। जो लोग फुटपाथ पर सामान रख देते या रास्ते पर पेशाब कर देते या बे-लाइन में घोड़ा-गाड़ी खडी करते उन लोगो के ही मुकदमे उस अदालत में आते थे। जिस दिन एक रुपया जुर्माना करने की यह आज्ञा निकली उसी दिन बंकिमचन्द्र ने चार आठ आने ही नही, दो आने तक जुर्माना किया।

और, एक मुकदमा तो इसलिए खारिज कर दिया कि नोटिस मे लिखे एक शब्द का अनुवाद गलत हो गया था। मजिस्ट्रेट ने जब यह सुना तो वह क्रुद्ध हो उठा। उसने लिखा, "बंकिमचन्द्र के बंगला भाषा के अभिमान ने फैसले को गलत कर दिया।" बंकिमचन्द्र ने इस बात का प्रतिवाद किया और लिखा कि ये शब्द काट देने चाहिएं।

बात ऊपर कमिश्नर तक गयी। कमिश्नर बंकिम-चन्द्र की प्रतिभा को पहचानता था। आदर भी करता था। अन्त में उसने वे शब्द काट दिये।

बंकिमचन्द्र का कितना दबदबा था इसकी एक और कहानी सुनिए। एक गाव मे एक मेला लगता

था। नाम था 'रामराजा का मेला।' एक बार नाजिर ओर एक वकील भाड़े की एक गाडी मे बैठ कर मेला देखने चले। अचानक पीछे एक कास्टेबल आकर खड़ा हो गया। गाडी में नाजिर और वकील बैठे थे, इसलिए गाडीवान का साहस बढ गया। उसने कांस्टेवल से उतर जाने के लिए कहा। कांस्टेबल उसे गाली देने लगा। शोर सुनकर नाजिर ने गाड़ी रोकने का हुक्म दिया और कास्टेवल से उतर जाने के लिए कहा। कास्टेबल ने बडी बेअदबी से उतर जाने से इकार कर दिया। इस पर नाजिर ने उसके एक बेत जड दी। अब तो कास्टेवल पागल हो उठा। उसने नाजिर और वकील दोनो को डण्डे से पीटना शुरू कर दिया और अपने साथियो को पुकारा। दौडते हुए दो कांस्टेवल वहां आये। नाजिर और वकील को देखकर उन्होने उस कास्टेवल से कहा—"तूने यह क्या किया। कचहरी के नाजिर और वकील को पीटा ?"

यह सुनकर पहले कास्टेबल ने जल्दी से गाडी की रोशनी बुझा दी और सडक से पत्थर उठाकर अपना सिर फोड लिया। कहा—"गाडी बिना रोशनी के जा रही थी। मैंने रोका, तो बाबुओ ने मुझे पीटा।"

यही नही। दूसरे दिन उसने मुकदमा भी दायर कर

दिया। वावू लोगों ने भी मुकदमा दायर कर दिया। मुकदमा वकिमचन्द्र की अदालत मे पहुँचा। वह तो न्यायप्रिय मजिस्ट्रेट थे। सब कुछ समझ गये और कास्टेबल को तीन महीने की सजा दी। ऊपर अपील करने पर सजा घट गयी, यह दूसरी वात है। पर वे सजा देने मे जरा भी नही झिझके। इसीलिए तो यह मुकदमा उनकी अदालत में न जाय, इस वात की पूरी कोशिश की गयी थी।

उस समय यह मुकदमा 'रामराजा का मुकदमा' के नाम से वहुत प्रसिद्ध हो गया था।

ये सब घटनाए हमने इसलिए दी है कि मनुष्य वकिमचन्द्र को समझने में सहायता मिले।

तीन

बकिमचन्द्र के पुरखा हुगली जिले के देशमुख गांव के रहने वाले थे। उनके परदादा का नाम रामहरि चट्टोपाध्याय था। विरासत में उन्हे नाना की सम्पत्ति मिली और वह अपना गांव छोडकर नाना के गांव काटालपाडा मे आकर रहने लगे। यह चौबीस परगना जिले मे है। इन्ही रामहरि के पोते यादवचन्द्र चट्टोपाध्याय थे। ये डिप्टी कलेक्टर थे। उन दिनो इस पद का बहुत सम्मान था। इनके चार पुत्र थे। उनमें तीसरे थे बकिमचन्द्र।

बकिमचन्द्र का जन्म २६ जून, १८३८ को हुआ था।

यादवचन्द्र के बारे मे एक कहानी सुनी जाती है। एक बार उनके एक फोडा निकला। काफी दिन बीमार रहे। रोग बहुत खराब था। आखिर एक दिन डाक्टरों ने देखकर बताया कि उनकी मृत्यु हो गयी है। जिस समय उनके शव को जलाने की तैयारी की जा रही थी, उसी समय एक सन्यासी वहां आये। सन्यासी ने

उन्हे जीवन दान दिया। यादवचन्द्र जी उठे और बाद मे उन्ही सन्यासी के शिष्य बन गये। बंकिमचन्द्र के साहित्य मे सन्यासियों की जो चर्चा आती है वह शायद इसी कारण है।

इसी सन्यासी ने यह भविष्यवाणी की थी कि यादवचन्द्र की एक संतान कुल का मुख उज्ज्वल करेगी। कहना नही होगा कि बंकिमचन्द्र ही वह सतान थे। उन्ही के कारण आज भी हम उनके कुल की चर्चा करते हैं। बंकिमचन्द्र के बडे भाई संजीवचन्द्र भी बड़े अच्छे लेखक हुए। लेकिन अपने छोटे भाई के समान प्रसिद्ध नही हो सके।

छ वर्ष तक बंकिमचन्द्र अपने गाव कांटाल्पाडा मे ही पढ़ते रहे। कहावत है, पूत के पाव पालने मे ही नजर आ जाते हैं। बंकिमचन्द्र बचपन से ही मेधावी छात्र थे। कहते है, पांच वर्ष की आयु में ही एक दिन उन्होने पूरी वर्णमाला याद कर ली थी। उनकी प्रतिभा को देख कर उनके गुरू ने कहा: "भाई, इस तरह चटपट सब कुछ सीख जाओगे तो मै तुम्हे कितने दिन पढ़ाऊगा।"

शायद ये गुरु जी बंकिम को पसद नही थे क्योंकि बाद मे उन्होने लिखा कि सौभाग्य से सात-आठ महीने

मे ही उनसे छुट्टी पाकर मोदीनगर पहुँच गया। मोदी-नगर मे उनके पिता डिप्टी कलेक्टर थे। लेकिन वहां जाने से पहले की एक घटना से यह पता चलता है कि वकिमचन्द्र कितने निडर थे।

यह १८५७ के सिपाही-विद्रोह से पहले की कहानी है। गोरो का उन दिनो वडा आतक था। जिस गाव के पास से गोरे निकल जाते वह गांव का गाव खाली हो जाता। एक दिन बालक बकिम पाठ-शाला मे वैठा हुआ था। उसके हाथ में गुरू जी की दी हुई वेत थी। उसी समय शोर मचा कि गगा के घाट पर गोरो की नाव लगी है। यह समाचार सुनकर गांव के स्त्री, पुरुष, वच्चे सब भाग निकले। पाठशाला के विद्यार्थी भी भाग चले। जूता फटकारते हुए गुरू जी भी दौड गये। एक आदमी टोकरा भर वैगन वाजार मे ले जा रहा था। वह उनको ठाकुरघर के दरवाजे पर छोड कर भाग गया। क्षण भर मे रास्ते निर्जन हो गये। घरो के दरवाजे वन्द हो गये। केवल बालक वकिम सडक पर धीरे-धीरे चला आ रहा था। उसी के लिए उसके घर का दरवाजा भी खुला था। उसे अकेला बाहर देखकर उसके दोनो वडे भाई और परि-वार के दूसरे लोग उसके पास आ खडे हुए।

आखिर गाव वाले इतना डरते क्यो थे ? बात यह थी कि गोरे नाव से यात्रा करते हुए कलकत्ता जाते। जहा सवेरा होता वही रुक जाते और गाव में घुस कर नाना प्रकार का उत्पात करते। इस गाव में पहले भी वे एक बार ऐसा कर चुके थे। इसलिए सब लोग डर कर भाग गये। बस बकिम बेत हाथ में लिये खड़ा रहा।

गोरों ने आकर उसे घेर लिया। क्या बात हुई किसी को पता नही। एक गोरा उसके हाथ से बेत लेकर देखने लगा। बालक बकिम जरा भी नही डरा, शान्त भाव से खडा रहा। आध घण्टे बाद गोरे लौट गये। बजरा छूट गया। गाव मे फिर जान लौट आयी।

बड़ी साधारण कहानी है। लेकिन इस साधारण कहानी से ही बकिम के साहस का पता लगता है। गाव वाले यह समझ नही सके कि बेत हाथ मे लिये बकिम किस तरह गोरो के सामने खडा रहा। बकिमचद्र ने बाद मे शायद इसी घटना को याद करके अपने उपन्यास 'चन्द्रशेखर' मे लिखा कि बगाली बच्चे केवल 'जू-जू' का नाम सुनकर ही डर जाते है, लेकिन एक ऐसा भी दुष्ट बालक है जो 'जू-जू' को देखना चाहता है।

बालक बंकिम जहाँ एक ओर इतना निडर था, वहां उसमे एक बहुत बडा दोष भी था। उसे खेलने का शौक नही था। खेलने के नाम पर बस ताश खेलना ही अच्छा लगता था। उसने कभी कसरत नही की। कभी दौडा नही। उसे तैरना भी नही आता था।

डिप्टी मजिस्ट्रेट और डिप्टी कलेक्टर हो जाने पर भी बंकिम कभी घोडे पर नही चढे। उनके छोटे भाई को उनके पिता ने एक घोडा दिया था। वह उस पर चढा करता था। पूजा की छुट्टियो मे जब बंकिम घर आये तो उन्होने उस घोडे को बिकवा दिया। खेलकूद से इतना डरते थे, तभी तो उनकी सेहत हमेशा खराब रहती थी। पतला-दुबला उनका शरीर, सदा रोगो का घर बना रहा।

शरीर भले ही दुबला-पतला रहा हो, लेकिन बालक बंकिम डरता बिलकुल नही था। गोरो की तो बात ही क्या, डाकुओ से भी नही डरता था। एक दिन की बात है—पता चला कि डाकू उसके घर डाका डालने वाले है। तब उसकी आयु दस-ग्यारह वर्ष की थी। पिताजी घर पर नही थे। दूसरे बडे-बूढों ने निश्चय किया कि घर की स्त्रिया और चारो भाई कुछ रात दूसरो के घर जाकर रहे। यह सुनकर

वालक वकिम अकड गया और सीना तान कर वोला : यह कभी नही हो सकता। घर छोड कर कही नही जाऊंगा।

फूफा जी ने कहा तव तो डाकू आकर हम सवको मार डालेगे।

वकिम ने उत्तर दिया. कैसे मार डालेगे। हमारे घर मे वहुत से लोग है, और गांव मे लाठी चलाने वाले भी तो है। उनको वुला कर घर मे रखो। फिर डाकू हम को कैसे मार सकते है ?

उनके दोनो वड़े भाइयो ने भी यही कहा। बस, अब तो वंकिम की जीत हो गयी। वड़े-वूढ़ो ने उसकी सलाह से ही काम किया। कई रात तक वहुत से लोग उसके घर में सोते रहे। इसी वीच मे डाकू आये और लौट गये। उस दिन से ही गुरुजन वकिमचन्द्र को 'वांका' कह कर पुकारने लगे।

सचमुच बालक वकिमचन्द्र निडर था। और, यह निडरता उसमे जीवन भर वनी रही। लेकिन इसका यह मतलव नही है कि हम खेले-कूदे नहीं या कसरत नही करे।

बचपन में बकिमचन्द्र यदि अपने शरीर का भी ध्यान रखते तो शायद छप्पन वर्ष की कम उम्र में ही उनकी मृत्यु न हो जाती !

पढने लिखने मे बालक बकिम सदा आगे रहा। सात वर्ष की आयु में वह अपने पिता के पास चला गया और अंग्रेजी स्कूल में पढ़ने लगा। इस उम्र में परीक्षा मे सर्वप्रथम आकर उसने सबको चकित कर दिया। अंग्रेज हेड मास्टर उसको एक साथ दो क्लास आगे कर देना चाहता था। लेकिन पिता सहमत नही हुए। बालक बकिम पढने मे इतना व्यस्त रहता था कि पिता जी को उसके स्वास्थ्य की चिता होने लगती थी।

इसी समय ग्यारह वर्ष की उम्र में पाच वर्ष की एक लडकी से उसका विवाह हुआ। आज हमको हसी आती है, लेकिन तब शादी-विवाह छोटी उम्र मे करना ही अच्छा समझा जाता था। पर इस विवाह से बकिम पर कोई असर नही पडा। उसकी पढाई चलती रही। मेदिनीपुर से बदल कर अब पिता चौबीस परगना चले गये। बकिमचन्द्र काटालपाडा लौट गया और गगा के उस पार हुगली कालेज मे पडने लगा।

उस समय स्कूल भी कालेज के साथ जुडे हुए होते थे। सात वर्ष तक वह इस कालेज मे पडा। वह रोज सवेरे नाव मे सवार होकर गंगा के उस पार जाता। वर्षा के दिनो मे खूब वर्षा होती। गगा चढ जाती।

डर के मारे लोग उस पार नहीं जाते। लेकिन वकिम तो डरना जानता ही न था। आकाश मे घटाए घिरी होती, रह-रह कर विजली चमकती, छुट्टी हो जाने पर वकिम घाट पर आता। मांझी से पूछता . क्यो रे, नाव नही छोड़ेगा ?

वड़े आदमी का वेटा। मांझी ना कैसे करता ? नौका खोल देता। किसी दिन वर्षा से पहले ही घर पहुंच जाते, किसी दिन मंझधार मे पहुचते-पहुचते काले मेघ नदी के पानी को भी काला कर देते। नदी में जोर-जोर से तरगे उठने लगती। इस भयानक दृश्य की कल्पना वही कर सकते हैं जो ऐसे समय मे नाव में वैठकर नदी मे गये हों। एक दिन ऐसी ही हालत थी। इतना तेज कुहरा पड रहा था कि पास के आदमी को भी नही देखा जा सकता था। दस-ग्यारह वजे होगे। वंकिम कालेज जाने के लिए निकला। माझी ने कहा · मैं नाव कैसे खोलू ? मुझे दिशा का ज्ञान तो हो ही नही सकता।

पर वंकिम ने एक न सुनी। नाव खोलने का हुक्म दिया। नदी में भाटा आ रहा था। नाव चलने लगी। उस पार पहुँचने में कुल दस-पन्द्रह मिनट तो लगते ही थे। किन्तु उस दिन एक घण्टा लग गया। नाव चलती

रही। कालेज के घाट का पता ही नही लगा। बकिम ने पूछा . क्यो रे ! कहां जा रहा है ?

मांझी ने उत्तर दिया : यह मै नहीं जानता। ऐसा लगता है कि भाटा दक्षिण की ओर है।

बस माझी पतवार रखकर बैठ गया। नौका बहती रही और बकिम हसता रहा। कुछ देर बाद नाव अपने आप किनारे पर जा लगी। बंकिम ने पूछा : यह कौन-सी जगह आ गये ?

जगह कोई भी हो, बात निडरता की है। अपने उपन्यास 'कपाल कुण्डला' के शुरू में बंकिमचन्द्र ने इसी घटना का वर्णन किया है।

बकिमचन्द्र को बचपन मे कहानियां सुनने का भी बडा शौक था। खास तौर से सच्ची कहानियां सुनने का। इन्ही में से कई कहानियों के आधार पर उन्होने बडे होकर अपने उपन्यास भी लिखे। जो भी हो, बकिमचंद्र को पढने का खूब शौक था। कई बार परीक्षा मे प्रथम आकर उन्होने छात्रवृत्ति पायी।

यही नही, स्कूल के बाहर भी बंकिम खूब पढ़ते थे। पुस्तकालय की सभी अच्छी-अच्छी पुस्तके पढ डालते थे। इसने उनके स्कूल की पढाई मे जरा भी रुकावट

नहीं आती थी। उनको कविता का भी वडा शौक था। कहानियां भी खूब कहते थे। कांटालपाडा में रहते समय उन्होने सस्कृत और वगला का भी खूब अध्ययन किया। भारतचंद्र और गीत-गोविन्द के वहुत से गीत उन्हें कण्ठस्थ थे। पंद्रह वर्ष की आयु में वह स्वय भी कविता करने लगे थे, और वंगला भापा की कविता प्रतियोगिता में उन्होंने पारितोषिक भी पाये। यह सन् १८५३ की बात है। इसी वर्ष वह जूनियर स्कॉलरशिप परीक्षा में भी प्रथम आये और उन्हे आठ रुपये महीने की छात्रवृत्ति मिली। बाद में १८५६ में वे सीनियर वृत्ति की परीक्षा में बैठे और दो वर्ष के लिए बीस रुपये मासिक की वृत्ति पायी।

उस समय बंगाल में गद्य तो था ही नही। जो था उसकी बहुत बुरी दशा थी। इसलिए वकिमचन्द्र ने पहले कविता करनी शुरू की। उस समय 'सम्वाद प्रभाकर' नामक एक पत्र निकलता था। उसके सम्पादक श्री ईश्वरचन्द्र गुप्त थे। उस समय के वह प्रसिद्ध कवि थे। इसी पत्र में वकिमचन्द्र की कविता छपी। ईश्वर-चन्द्र गुप्त को आदर्श मान कर वकिमचन्द्र वहुत दिन तक लिखते रहे। गुप्त महाशय प्रतिभावान युवकों को लिखने के लिए प्रोत्साहित किया करते थे।

'सम्वाद प्रभाकर' के अलावा 'सम्वाद साधुरंजन' नाम का भी एक पत्र निकलता था। उसमें भी बंकिमचंद्र की कविताएं छपी।

इन्ही दिनो अलग-अलग कालेज के छात्रों में भी कविता करने की प्रतियोगिता चलती थी। प्रतियोगिता का नाम था 'कालेज का कविता युद्ध'। बकिमचन्द्र भी इस युद्ध मे शामिल हो गये। इसमे तीन विद्यार्थी बहुत प्रसिद्ध हुए। हुगली कालेज के बंकिमचन्द्र, कृष्णनगर कालेज के द्वारकानाथ अधिकारी और हिन्दू कालेज के दीनबन्धु मित्र। द्वारकानाथ छोटी उम्र मे ही मर गये। लेकिन बकिमचन्द्र और दीनबन्धु आगे चल कर बहुत गहरे मित्र हुए। उनकी यह मित्रता अमर हो गयी है। जैसे दोनो मे कोई भेद-भाव था ही नही। दोनों एक-दूसरे को कविता मे पत्र लिखते और स्नेह भरी गाली भी देते थे। दीनबन्धु को हसी-ठट्ठे में कोई नही जीत सकता था। बकिमचन्द्र के समान वह भी प्रसिद्ध लेखक हुए। उनका नाटक 'नीलदर्पण' एक अमर कृति है। इस नाटक मे उन्होने नीलहे गोरो के अत्याचार की कहानी कही है।

सन् १८५६ मे १८ वर्ष की उम्र में कानून पढने के लिए बकिमचन्द्र ने वह कालेज छोड़ दिया और

कलकत्ता चले गये। वहां प्रेसीडेन्सी कालेज में पढ़ना शुरू किया। इसी वर्ष उनकी पहली कविता पुस्तक प्रकाशित हुई। नाम था 'ललिता और मानस'। ये दो अलग-अलग काव्य थे और एक साथ प्रकाशित हुए थे।

जैसा कि हम पहले बता चुके है, हुगली कालेज में पढ़ते समय उन्होंने संस्कृत पढ़ी थी। कालेज से लौट कर संध्या के समय वह पढ़ते थे। व्याकरण के अतिरिक्त रघुवंश, भट्टीकाव्य, मेघदूत, उद्धवदूत आदि सब उन्होंने पढ़ डाले थे।

लेकिन प्रेसीडेन्सी कालेज में वह नही पढ़ सके क्योंकि इसी वर्ष बी. ए. की कक्षाएं आरम्भ हो गयी। वह प्रवेश परीक्षा में बैठे और प्रथम श्रेणी में पास हुए।

सन् १८५८ में बंगाल में पहली बार बी. ए. की परीक्षा हुई। इसमें तेरह विद्यार्थी बैठे थे। इनमें से केवल दो विद्यार्थी द्वितीय श्रेणी में पास हो सके। ये दो विद्यार्थी थे—बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय और यदुनाथ बसु।

यह परीक्षा इतनी कठिन थी कि वास्तव में एक भी विद्यार्थी उसमें पास नही हो सकता था। बकिमचन्द्र और यदुनाथ पांच विषयों में तो बहुत अच्छी तरह पास हो गये थे, लेकिन छठे विषय में सात नम्बर से रह

गये थे। परीक्षाओं के बोर्ड ने सिफारिश की कि इन दोनों विद्यार्थियों को सात नम्बर 'ग्रेस' के दिये जायें और पास कर दिया जाय। सिण्डीकेट नें उनकी यह सिफारिश मान ली। लेकिन साथ ही यह भी लिख दिया कि भविष्य मे फिर कभी ऐसा नही किया जायगा।

इस प्रकार वकिमचन्द्र वगाल के पहले वी. ए. पास व्यक्ति हुए। ११ दिसम्बर १८५८ को उन्हें बी. ए. की डिग्री मिली। उस समय उनकी आयु साढे वीस वर्ष की थी।

इसी वर्ष उनको डिप्टी कलेक्टर और डिप्टी मजिस्ट्रेट बना दिया गया। उनकी प्रतिभा से बंगाल के तत्कालीन छोटे लाट बहुत खुश थे। उनका नाम चारों ओर फैल गया। कानून की परीक्षा तो उन्होने ग्यारह वर्ष बाद, जनवरी १८६९ मैं प्रथम श्रेणी मे पास की।

चार

६ अगस्त १८५८ से लेकर १४ सितम्बर १८९१ तक—३३ वर्ष से भी अधिक समय तक—बंकिमचन्द्र ने सरकारी नौकरी की। लेकिन वह इस नौकरी से कभी खुश नही रहे। उन्होंने लिखा है, "नौकरी मेरे जीवन का अभिशाप रही।"

कैसी अद्भुत बात थी कि वह नौकरी करते थे सरकारी, लेकिन अपनें देश से उन्हें अत्यंत प्रेम था। इसी वेदना में से उनका साहित्य निकला। इसीलिए उसमें जगह-जगह देशप्रेम का स्वर स्पष्ट दिखाई देता है।

नौकरी करते हुए भी वह खूब पढ़ते थे और लोगों को पास से देखते थे। अपनी नौकरी के सिलसिले में वह बंगाल और उड़ीसा में बहुत जगहों पर रहे। वहाँ के लोगों से मिले। उनके जीवन का अध्ययन किया। यही सब अध्ययन उनकी रचनाओ मे बिखरा पडा है। उनकी नौकरी का आरभ जैसोर से हुआ। यही पर

प्रसिद्ध नाटककार दीनबंधु मित्र के साथ उनकी मित्रता हुई।

शुरू से ही वंकिमचन्द्र अपनी सूझ-बूझ और न्याय-प्रियता के लिए प्रसिद्ध रहे है। उनकी सूझ-बूझ के सम्बंध मे एक कहानी बहुत प्रसिद्ध है।

एक बार उनकी अदालत में चोरी का एक मामला पेश हुआ। आसामी के रूप में दो आदमी उनके सामनें पेश किये गये। गवाह भी काफी थे। सबने अपनी-अपनी बात कही। लेकिन सब कुछ सुन कर भी वंकिमचन्द्र इस बात का फैसला नही कर सके कि इनमें चोर कौन है। दोनों एक-दूसरे पर आरोप लगाते थे। बंकिमचन्द्र ने उनसे कहा—अच्छा एक बार अपनी-अपनी बात फिर तो कहो।

उनमे एक राहगीर था। उसने कहा: हुजूर, मै तो एक रास्ता चलने वाला हू। रात के समय जब अपने रास्ते पर चला जा रहा था तो मैने इस आदमी को देखा। यह पास के घर से चोरी करके सामान उठाये भाग रहा था। मैने उसे उसी समय पकड़ लिया और 'चोर-चोर' कह कर चिल्लाने लगा। कुछ ही देर मे गाव के दूसरे लोग और चौकीदार भागे हुए आये और उसको पकड़ लिया।

दूसरे व्यक्ति ने कहा : हुज़ूर, मैं रात के समय सो रहा था। सहसा आवाज सुन कर जाग उठा। बाहर आया। देखा कि यह राहगीर पास के घर से चीज़ें चुरा कर भाग रहा है। मैंने उसे उसी क्षण पकड़ लिया और 'चोर-चोर' चिल्लाने लगा। तब गांव के लोग और चौकीदार वहा भागे हुए आए।

गांव वाले और चौकीदार गवाही देते हुए बोले : हुज़ूर, जब हम आवाज सुनकर वहां पहुँचे तो ये दोनों व्यक्ति आपस में एक-दूसरे को पकड़ रहे थे और 'चोर-चोर' चिल्ला रहे थे। इनमें से कौन-सा चोर है, यह न जान कर हमने दोनों को ही पकड़ लिया और पुलिस के हवाले कर दिया।

यह सुनकर बंकिमचन्द्र ने कुछ देर के लिए अदालत का काम रोक दिया। वह उठ कर भीतर चले गये। अक्सर ऐसा हो जाता था। कुछ देर बाद वह लौट आये और फिर काम शुरू हो गया। उसी समय बाहर से एक आदमी वहां आया। उसने कहा : हुज़ूर, अदालत के कुछ दूर पर एक विदेशी अचानक बेहोश होकर गिर पडा है। अब तो शायद वह मर गया होगा।

बंकिमचन्द्र ने तुरन्त दो सिपाहियों से कहा—तुम दोनो इन दोनो आसामियों को ले जाओ और उस विदेशी व्यक्ति के शव को उठाकर ले आओ।

सिपाही उन दोनों को लेकर वहां पहुंचे। सचमुच एक शव सिर से पैर तक ढका हुआ वहा पड़ा था। सिपाहियो ने उन दोनो से कहा—इसे उठाकर ले चलो।

दोनो आसामी उस लाश को उठा कर ले चले। दो आदमियों का इस प्रकार लाश को उठाना बड़ा मुश्किल होता है। वेचारे परेशान थे। तभी दूसरे व्यक्ति ने राहगीर से कहा : बापू, अपनी राह चले जा रहे थे। चोर पकड़ने की क्या जरूरत थी ? अब भुगतो बच्चू !

इसके बाद वे दोनो लाश को लिये हुए अदालत मे पहुँचे। लेकिन जैसे ही उन्होंने लाश को उतार कर नीचे रखा, वह उठ कर खड़ी हो गयी। सब लोग हैरान होकर उसकी ओर देखने लगे। वह अदालत का एक सिपाही था और जीता-जागता उनके सामने खड़ा था। उसने तुरत असली चोर को पकड़ लिया और बंकिम ने कहा : हुजूर ! यह राहगीर वेचारा निर्दोष है। यह दूसरा आदमी ही असली चोर है।

यह चाल वंकिमचन्द्र ने ही चली थी। वह जानते थे कि मौका पड़ने पर ये दोनो आपस में जरूर कुछ बात करेंगे। और, उस बातचीत से चोर को पहचानना आसान हो जायेगा। कहना नही होगा, उन्होने असली चोर को जेल भेज दिया और राहगीर को छोड दिया। उनकी इस सजह बुद्धि की कहानी थोड़े दिनो मे ही चारों ओर फैल गयी।

इसी समय उनकी पत्नी की मृत्यु हो गयी। अब उनका जैसोर में रहना बड़ा मुश्किल हो गया। वह बदली करवा कर कांथी चले गये। यह सन् १८५९ की बात है। इस समय उनकी आयु कुल २१ वर्ष की थी। इस आयु में तो आजकल कोई शादी भी नही करता।

जून १८६० में २२ वर्ष की आयु में उन्होने दूसरी शादी की। उनकी दूसरी पत्नी राज्यलक्ष्मी प्रसिद्ध चोधरी परिवार की कन्या थी। उनके जीवन मे इस पत्नी का बहुत महत्व है। उन्होने वार-बार उसकी प्रशसा की है। वह यहां तक कहा करते थे कि—यह स्त्री मेरे जीवन की कल्याण-स्वरुपा है। मेरा जीवन अविराम संघर्ष का जीवन है। एक व्यक्ति का मेरे जीवन पर बहुत अधिक प्रभाव है, मेरे परिवार या

मेरी जीवनी लिखे जाने पर उनकी जीवनी लिखनी होगी। उनके न रहने पर मै क्या होता, कह नहीं सकता।

उस समय वहा पर चोर-डाकुओं का बड़ा उपद्रव होता था। वकिमचन्द्र ने बड़ी कठोरता के साथ उनका दमन किया। वहां शाति स्थापित की। एक वर्ष में ही उन्होने यह कठिन काम कर दिखाया। उसके वाद वहा से बदल कर खुलना चले गये।

खुलना मे उन दिनो नीलहे गोरे साहव बहुत अत्याचार करते थे। बगाल और विहार मे इनके अत्याचारो की कहानिया बहुत प्रसिद्ध है। दीनवन्धु मित्र के नाटक 'नील दर्पण' की चर्चा पीछे हो ही चुकी है। इन्ही के अत्याचार को दिखाने के लिए वह लिखा गया था। बहुत दिनो वाद, विहार में महात्मा गाधी ने इनके खिलाफ सत्याग्रह किया।

लेकिन वकिमचन्द्र के युग मे सत्याग्रह की वात कोई सोच भी नही सकता था। ये गोरे लोग वहुत जुल्म करते थे। जानते थे उनके जात भाई अंग्रेजों का राज्य है। उनका कोई क्या बिगाड़ सकता है। लेकिन वे यह नही जानते थे कि आखिर अत्याचार की एक सीमा होती है।

बंकिमचन्द्र ने सारी स्थिति को पास से देखा और इन लोगों को कड़ा दण्ड देकर इनके अत्याचार को कम किया। यहा तक सुना जाता है कि बहुत से नीलहे गोरे तो बंकिमचन्द्र के डर से खुलना छोड़कर आसाम भाग जाते थे। लेकिन बंकिमचन्द्र उन्हे वहां से भी पकड़ मगवाते और सजा देते। इस प्रकार बहुत से दुरात्मा गोरों को इन्होने दण्ड दिया। इनके प्रताप से ही खुलना जिले के लोग निडर हुए और पहली बार यह समझे कि नीलहे लोग देश के राजा नही हैं।

नीलहे साहब किस तरह के अत्याचार करते थे इसकी एक कहानी उनके छोटे भाई ने लिखी है। एक समय एक नीलहे साहब ने हाथी की सूड में एक मशाल बांध कर एक गांव जला दिया। उस समय अलग पुलिस महकमा नही बना था। मजिस्ट्रेट के नीचे ही पुलिस काम करती थी। उसको हुक्म हुआ कि इन साहब को पकड कर तुरन्त हाजिर किया जाय। लेकिन दरोगा उस साहब को नहीं पकड़ सके। उसके पास हमेशा भरी हुई पिस्तौल रहती थी। तब बंकिमचन्द्र आगे आये। निडर तो वह बचपन से ही थे। वह उन साहब की पिस्तौल से कैसे डरते! उन्होने उसे गिफ्तार कर लिया। लेकिन वह तो ब्रिटेन का रहने वाला था।

उसका मुकदमा बकिमचन्द्र की अदालत में नही हो सकता था। उसे हाईकोर्ट के सुपुर्द कर दिया गया। फिर भी बकिमचन्द्र उस अदालत में गवाही देने के लिए गये क्योकि उन्होने ही उसे गिरफ्तार किया था।

इस घटना से पता लग जाता है कि नीलहे लोग कैसे मनमाना अत्याचार करते थे और वंकिमचन्द्र किस प्रकार उनका मुकाबला करते थे।

केवल नीलहे लोग ही नही, उन दिनो सुन्दर-वन में डाकुओ के दल बहुत उत्पात करते थे। नाव से जाने वाले यात्रियों को लूट लेते और मार डालते। वकिमचन्द्र ने उनका भी मुकाबला किया और थोड़े ही दिनो में सब डाकुओ को पकड़ कर जेल में बन्द कर दिया। लोगो ने शान्ति की सांस ली। अब वह विना किसी डर के यात्रा करने लगे।

पुलिस भी तो सदा से ही अत्याचार करती आयी है। वकिमचन्द्र इस ओर भी बड़े सजग रहते थे और अपने फैसलो में पुलिस के अत्याचार की निन्दा करते थे। अवसर पाने पर उन्हे दण्ड देने मे भी नही हिच-कते थे।

वकिमचन्द्र के कार्य के सम्बंध मे 'सम्वाद प्रभाकर' के १२ मई १८६५ के अक मे एक पत्र छपा था।

उससे पता लगता है कि लोग उन्हे कितना प्यार करते थे। उस पत्र मे लिखा था. "सौभाग्य से वारुईपुर के रहने वालो को श्रीयुत बाबू बकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय डिप्टी मजिस्ट्रेट के रूप मैं मिले हैं। बाबू बकिमचन्द्र शिक्षा के विषय मे जिस प्रकार हमारी श्रद्धा और सम्मान के पात्र हैं, उसी प्रकार अपनी सूझबूझ के संबंध में सरकार और प्रजा की प्रशंसा के पात्र है। ये चार रूप में काम करते हैं—डिप्टी मजिस्ट्रेट, डिप्टी कलेक्टर, दलीलो के रजिस्ट्रार और स्टाम्पों के संग्रहायक। वे उचित व्यक्तियो के साथ उचित वार्तालाप करते हैं। शारीरिक कष्ट को कष्ट न मान कर रोग की अवस्था मैं भी अदालत का काम करते है। कार्तिकी पूर्णिमा के अवसर पर वारुईपुर मे रास-यात्रा होती है। उसमें असंख्य जनता आती है। वकिमचन्द्र ने उस असख्य जनता के बीच पैदल घूमकर शाति की स्थापना की तथा दूसरे काम किये।···वे सब प्रकार से प्रशंसा और धन्यवाद के पात्र है।"

लेकिन इन बातों का क्या परिणाम हो सकता है!

क्या सरकार उनसे खुश थी? क्या पुलिस उनसे खुश थी? वेशक हाकिम लोग उनकी अंग्रेजी भाषा के ज्ञान पर मुग्ध थे। लेकिन उनके लिखने का तीखापन

उन्हे चुभता था और इसका जो परिणाम हो सकता था, वही हुआ। ऊपर से उन्होने कुछ नही कहा। लेकिन इतना योग्य व्यक्ति जन्म भर डिप्टी मजिस्ट्रेट और डिप्टी कलेक्टर ही बना रहा, क्या यह कम सजा थी। वेशक, कुछ थोड़े से दिनों के लिए सन् १८८१ में वह बगाल सरकार के असिस्टेंट सेक्रेटरी बने। पर लगभग साढे चार महीने ही वे इस पद पर रह सके। फिर डिप्टी मजिस्ट्रेट होकर चले आये।

इस बात को लेकर उस समय 'स्टेट्समैन' मे सरकार की आलोचना भी की गयी थी। स्वयं बकिमचन्द्र ने भी इसको बहुत महसूस किया था और इस दासता के प्रति उनके मन में बराबर धिक्कार का भाव बना रहा।

झासी की रानी के चरित्र को लेकर वह एक उपन्यास लिखना चाहते थे, पर नही लिख सके। उन्होने अपने एक मित्र से कहा था—"मेरी इच्छा होती है कि एक बार उस चरित्र को चित्रित करूं। परन्तु एक 'आनन्दमठ' से ही साहब लोग बिगड़ गये है। ऐसा हुआ तो और रक्षा न हो सकेगी।"

दूसरी ओर उनके कार्य के सम्बध मे श्री सी. ई. बाकलेन्ट ने अपनी पुस्तक 'लेफ्टिनेन्ट गवर्नरों के शासन

में बंगाल' में इस प्रकार चर्चा की है : "सन् १८५८ में वह पहले व्यक्ति थे जिन्होने बी. ए. की डिग्री प्राप्त की थी। सर एफ. हालीडे की सरकार ने उन्हें तुरन्त डिप्टी मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त कर दिया। यह उनकी प्रतिभा का सम्मान था। सन् १८८५ तक वह प्रान्तीय सेवा में प्रथम श्रेणी तक पहुच गये। कुछ दिन के लिए वह बंगाल सरकार के असिस्टेंट सेक्रेटरी भी रहे। अनेक जिलों में उन्होंने बहुत अच्छा काम किया। वह राजशाही और वर्द्धमान के कमिश्नरो के परसनल असिस्टेंट भी रहे। जून १८६७ में क्लर्कों की तनखाह पर विचार करने के लिए जो कमीशन बना था, उसके वह सेक्रेटरी थे। खुलना सब-डिवीजन मे रहते हुए उन्होने डाकुओं को समाप्त करने का बहुत अच्छा काम किया और पूर्वी नगरों में शान्ति स्थापित की।"

सरकार ने उन्हे रायबहादुर और सी. आई ई. की उपाधि दी। लेकिन यह उनकी न्यायप्रियता या निडरता का नहीं, साहित्यिक प्रतिभा का सम्मान था।

सरकारी नौकरी में रहते हुए बंकिम बाबू केवल अपनी निडरता और न्यायप्रियता के लिए ही प्रसिद्ध नही थे, वह सरकारी काम में न किसी की सिफारिश करते थे और न किसी की सिफारिश सुनते थे। एक

बार उनके एक पूर्व-परिचित बन्धु उनसे मिलने के लिए आये। वह सन्यासी हो चुके थे और उन्होने गेरुवे वस्त्र पहन रखे थे। उनके आने का उद्देश्य अपने किसी बन्धु के लिए एक सिफारिशी पत्र लेना था। बंकिम बाबू नें बडी उपेक्षा से, लेकिन बड़ी मीठी भाषा में, उत्तर दिया : "यह सब मै नही कर सकता। तुमने गेरुवे वस्त्र पहनें है, सन्यासी हो गये हो। बाहर से मै अफसर दिखाई देता हू, लेकिन मन ही मन मैं भी संन्यासी ही हूँ।"

लेकिन वह सदा ही इतने शान्त भाव से उत्तर दे देते हो, यह बात नही। अहकार उनमें था और कभी-कभी वह बडी तेजी से प्रकट होता था। एक बार एक ब्राह्मण रामनामी दुपट्टा ओढे हुए उनसे मिलने आया। बकिमचन्द्र ने बडे आदर के साथ उसे बैठाया। कुछ देर बाद तमाखू खाते-खाते उस ब्राह्मण ने पूछा—

"क्या एक गुप्तचर का बन्दोबस्त करने की व्यवस्था आपके हाथ मे है ?"

यह सुनना था कि बकिमचन्द्र क्रुद्ध हो उठे। हुक्के की नली मुह से निकाल कर उन्होने कहा : तो यह बात है ! तुम इसलिए आये हो ? बाहर निकल जाओ !!

ब्राह्मण सहमा अप्रतिभ रह गया। उसे लगा जैसे

उसका अपमान किया गया हो। एक मित्र वहां बैठे हुए थे। उनकी ओर कातर भाव से देखता हुआ वह वहा से चला गया। वंकिम वावू ने उन मित्र से कहा . तुमने यह तमाशा देखा ?

मित्र वोले किसका? आपका या उस ब्राह्मण का ?

वंकिम ने कहा . मेरा क्यों ? वह सज्जन आये। मैंने उनको प्रणाम करके आदर के साथ बैठाया। इस पर उन्होने ऐसा व्यवहार किया। उन्होने दफ्तर की वात घर में क्यों पूछी !

मित्र ने कहा : आप उन्हे प्यार से समझाकर कह सकते थे कि वह दफ्तर में आ जाये। अपमान करने की क्या जरूरत थी ?

वंकिम वावू वोले : तुम वच्चे हो ! ऐसे लोगो के साथ अगर सख्ती से व्यवहार न किया जाय तो काम नही हो सकता।

जो भी हो, पर इससे उनके स्वाभाव के खरेपन और सच्चाई के प्रति उनके प्रेम का पता तो लगता ही है।

पांच

जिस समय वह बारुईपुर चौबीस परगना में काम कर रहे थे, उस समय बंकिमचन्द्र ने अपना प्रथम उपन्यास 'दुर्गेशनन्दिनी' लिखा। यह सन् १८६५ की बात है। वैसे यह उपन्यास सन् १८६३ मे लिखा जा रहा था।

हम पीछे कह आये है कि जिस समय वह पढ रहे थे, उसी समय उन्होने लिखना आरम्भ कर दिया था। सन् १८५३ से १८५६ तक के चार वर्षो मे उन्होने बहुत कुछ गद्य-पद्य लिखा। कविवर ईश्वरचन्द्र गुप्त उनसे बहुत प्रसन्न थे। फिर आठ वर्षो तक उन्होने कोई विशेष काम नही किया। उसके बाद, 'एजूकेशन गजट' मे कुछ लिखते रहते थे। इधर उनका सम्बन्ध अंग्रेजी साहित्य से बहुत रहा।

सरकारी काम करते रहने के कारण अंग्रेजी की बड़ी चर्चा होती थी जिसका परिणाम यह हुआ कि 'दुर्गेशनन्दिनी' से कुछ पहले उन्होने एक उपन्यास अंग्रेजी मे लिखा। उसका नाम था—'राममोहन की [illegible]।' [illegible] बाद [illegible] के अखबार 'इण्डियन

फील्ड' में सन् १८६४ में धारावाहिक रूप में छपा। वास्तव में यही उनकी पहली साहित्यिक कृति थी। बाद में इसके प्रथम ७ अध्यायो का उन्होने स्वय बंगला भाषा में अनुवाद किया। लेकिन अग्रेजी मैं लिखने से उनका मन नही भरा। विदेशी भाषा मैं अच्छा लिखने पर प्रशंसा पायी जा सकती है, किन्तु अच्छे साहित्य की रचना नही हो सकती। तब उन्होंने 'दुर्गेशनन्दिनी' की रचना की।

इसी उपन्यास के साथ बंगला भाषा और साहित्य का नया जन्म हुआ। बहुत देर से जिस घर मैं अंधेरा छाया हुआ था, उसका मानो दरवाजा खुल गया और वह रोशनी से भर उठा। 'दुर्गेशनन्दिनी' के प्रकाशित होने पर. शिक्षित बंगालियो ने अनुभव किया मानो साहित्यिक आकाश में एक नया चांद निकला है। इसी एक उपन्यास के बल पर वह श्रेष्ठ साहित्यिक के रूप में प्रसिद्ध हो गये। उन्होने अग्रेजी भाषा के उपन्यासों का अनुसरण किया, परन्तु उनके पात्र, उनकी घटनाए, उनकी समस्याएं, उनके विचार, सब देशी हैं।

'दुर्गेशनन्दिनी' का कैसा स्वागत हुआ, इसके बारे में एक घटना से पता चल सकता है। एक बार बडे दिन की छुट्टियो मे बहुत से व्यक्ति उनसे मिलने आये।

उनमें भाटपाडा के प्रसिद्ध पण्डित भी थे। तब उन्होंने 'दुर्गेशनन्दिनी' लिख कर पूरी ही की थी। उसे उन्होंने सब को पढ कर सुनाया। तन्मय होकर सब लोगों ने उसे सुना। बीच में जरा भी आहट होती, कोई आता-जाता, तो सब परेशान हो उठते। दो दिन तक पाठ हुआ। अभी भाषा में व्याकरण के दोष थे। पढ़ने के बाद उन्होने पूछा: इसमे व्याकरण के दोष है, यह क्या आपने देखा?

एक पण्डित ने उत्तर दिया: कथा इतनी रोचक है कि हम कुछ और सोच ही न सके।

दूसरे बोले: मैने व्याकरण के दोष लक्ष्य तो किये थे, किन्तु उन्ही स्थानो पर भाषा और भी मधुर हो उठी थी।

इससे अधिक प्रशसा और क्या होगी!

अगले वर्ष सन् १८६६ मे उनका दूसरा उपन्यास 'कपाल कुण्डला' प्रकाशित हुआ। तीन साल बाद सन् १८६९ मे 'मृणालिनी' का प्रकाशन हुआ।

अब तो उनकी प्रसिद्धि चारो ओर फैल गयी। लोगो ने बंगला भाषा के माधुर्य को पहचाना। बहराम-पुर, मुर्शिदाबाद मे (१८६९-७४) रहते समय उनकी साहित्य की प्रतिभा विशेष रूप से स्पष्ट हुई। उन्होने

केवल उपन्यास ही नही लिखे, दूसरे विपयों पर भी लेख लिखे। इनमें से कुछ के नाम है : "हिन्दू त्योहारों का स्रोत," "बगाल के लिए लोकप्रिय साहित्य," "बंगाली साहित्य तथा बौद्ध और सांख्य दर्शन," "हिन्दू दर्शन का अध्ययन," आदि। लेकिन अग्रेजी मे लिखना उनको विशेष प्रिय नही था। इसलिए बगला में भी साथ-साथ लिखते रहे।

इसी काल में बहरामपुर मे ही बहुत से विद्वानों से उनका मिलना हुआ। इनमें से कुछ थे—भूदेव मुखोपाध्याय, राजकृष्ण मुखोपाध्याय, लालबिहारी डे, दीनवंधु मित्र, अक्षयचन्द्र सरकार, गुरुदास बदोपाध्याय। इन सब के साथ वह स्वदेश, समाज, साहित्य और संस्कृति के सम्बंध मे विचार किया करते थे। स्वभाव से वह एकांत-प्रिय व्यक्ति थे लेकिन स्वदेश के लिए सामाजिक बन गये।

बंकिमचन्द्र मातृभाषा और मातृभूमि दोनों को अपनी मां के समान प्यार करते थे। मातृभाषा के क्षेत्र मे उन्होंने जो कुछ किया, उसमें 'बग दर्शन' का नाम बडे गौरव के साथ लिया जाता है। यह मासिक पत्र इन्ही के प्रयत्नों से आरम्भ हुआ था। यह ही उनके

पहले सम्पादक हुए। उनके रहते लेखकों का भी कोई अभाव नही रहा।

देखते-देखते उनके बड़े भाई संजीवचन्द्र, जगदीश चन्द्र राय, अक्षयचन्द्र सरकार आदि बंकिमचन्द्र के आग्रह पर साहित्य सेवा में लग गये। रमेशचन्द्र दत्त जैसे व्यक्ति उनके कहने पर बंगला मे लिखने लगे। बाद मे हर प्रसाद शास्त्री को भी उन्होने इस ओर प्रवृत्त किया।

शास्त्री जी सन् १८७४ में संस्कृत कालेज के तीसरे वर्ष मे पढते थे। महाराज होल्कर कालेज देखने के लिए आये। उनके साथ आये महात्मा केशवचन्द्र सेन। महाराज होल्कर पुरस्कार दे गये। केशव बाबू ने कहा: जो छात्र 'संस्कृत के प्राचीन लेखको के आधार पर नारी का सर्वोच्च आदर्श' इस विषय पर निबंध लिखेगा उसे पुरस्कार दिया जायेगा।

अपने अध्यापक के कहने पर शास्त्री जी ने वह निबंध लिखा। अंत मे उन्हें ही पुरस्कार मिला। गवर्नर सर रिचर्ड ने उन्हें पुरस्कार दिया और उनकी प्रशंसा की। शास्त्री जी सोचने लगे कि ऐसी अच्छी रचना को छपाया क्यों न जाए।

फिर उन्होने 'आर्य दर्शन' को वह लेख भेजा, परतु उन्होंने लौटा दिया। बहुत दिन वीत गये। एक दिन उनकी भेट श्री राजकृष्ण मुखोपाध्याय से हो गयी। वह शास्त्री जी को बहुत स्नेह करते थे। बातो ही बातो में उनसे इस रचना की चर्चा हुई। उसे पढ़ कर एक दिन उन्होंने कहा : तुम चाहो तो मै इसे 'बग दर्शन' में छपवा सकता हूँ।

सुनकर शास्त्री जी को आश्चर्य हुआ। कहा : मैंने 'आर्य दर्शन' में छपाने का प्रयत्न किया था, लेकिन सफल नही हुआ। 'बग दर्शन' इसको स्वीकार करेगा, यह विश्वास नही होता।

राजकृष्ण मुखोपाध्याय बोले · यह तुम्हारे सोचने की वात नही।

और एक दिन शास्त्री जी को लेकर वह वकिमचन्द्र के घर गये। वहा पर अनेक लोग बैठे बाते कर रहे थे। राजकृष्ण बाबू भी बातो मे लग गये। शास्त्री जी भी एक ओर बैठे थे। सहसा वकिमचन्द्र ने उन्हे देखा। पूछा—यह कौन है ?

राजकृष्ण बाबू ने उत्तर दिया—यह नेहाटी का रहने वाला है और सस्कृत कालेज मे पढता है। इस बार बी ए. पास किया है।

उन्होने पूछा : ब्राह्मण है ?

राजकृष्ण बाबू ने कहा : हां।

बंकिम बाबू ने फिर शास्त्री जी से पूछा : नेहाटी मैं तुम्हारा घर है। ब्राह्मण के लड़के हो। संस्कृत कालेज मे पढते हो। बी. ए पास किया है। फिर तुम मेरे पास क्यो नही आये ?

उसके बाद उन्होने उनके पिता का नाम पूछा। और सुन कर अत्यन्त आश्चर्य से बोले : तुम रामकमल न्यायरत्न के पुत्र हो ? तुम्हारे बडे भाई नंद के साथ मेरा बडा प्रेम था। हम एक ही उम्र के थे।

और फिर वह उनके बारे मे बहुत-सी कहानियां सुनाने लगे। तब राजकृष्ण बाबू ने कहा : आज यह एक काम से तुम्हारे पास आया है।

यह सुन कर बंकिम बाबू एकाएक गंभीर हो गये। पूछा : क्या काम ?

राजकृष्ण बाबू ने कहा : इसने एक लेख लिखकर पुरस्कार पाया है। 'बंग दर्शन' मे छपाने के लिए देना चाहता है।

बंकिमचन्द्र ने कुछ गंभीर लहजे में कहा : बंगला मे लिखना बड़ा कठिन है, विशेषकर संस्कृत वालो को। वह तो [illegible] ही लिखेंगे।

फिर उन्होने 'आर्य दर्शन' को वह लेख भेजा, परंतु उन्होने लौटा दिया। वहुत दिन वीत गये। एक दिन उनकी भेट श्री राजकृष्ण मुखोपाध्याय से हो गयी। वह शास्त्री जी को वहुत स्नेह करते थे। वातो ही वातो में उनसे इस रचना की चर्चा हुई। उसे पढ़ कर एक दिन उन्होने कहा : तुम चाहो तो मै इसे 'वग दर्शन' में छपवा सकता हूँ।

सुनकर शास्त्री जी को आश्चर्य हुआ। कहा : मैंने 'आर्य दर्शन' मै छपाने का प्रयत्न किया था, लेकिन सफल नही हुआ। 'वंग दर्शन' इसको स्वीकार करेगा, यह विश्वास नही होता।

राजकृष्ण मुखोपाध्याय वोले : यह तुम्हारे सोचने की वात नही।

और एक दिन शास्त्री जी को लेकर वह वकिमचन्द्र के घर गये। वहा पर अनेक लोग वैठे वाते कर रहे थे। राजकृष्ण वावू भी वातो मे लग गये। शास्त्री जी भी एक ओर वैठे थे। सहसा वकिमचन्द्र ने उन्हे देखा। पूछा—यह कौन है ?

राजकृष्ण वावू ने उतर दिया—यह नेहाटी का रहने वाला है और सस्कृत कालेज मे पढता है। इस वार वी ए. पास किया है।

उन्होंने पूछा : ब्राह्मण है ?

राजकृष्ण बाबू ने कहा : हां।

बंकिम बाबू ने फिर शास्त्री जी से पूछा : नेहाटी में तुम्हारा घर है। ब्राह्मण के लड़के हो। संस्कृत कालेज में पढ़ते हो। बी. ए. पास किया है। फिर तुम मेरे पास क्यो नही आये ?

उसके बाद उन्होंने उनके पिता का नाम पूछा। और सुन कर अत्यन्त आश्चर्य से बोले : तुम रामकमल न्यायरत्न के पुत्र हो ? तुम्हारे बड़े भाई नंद के साथ मेरा बड़ा प्रेम था। हम एक ही उम्र के थे।

और फिर वह उनके बारे में बहुत-सी कहानियां सुनाने लगे। तब राजकृष्ण बाबू ने कहा : आज यह एक काम से तुम्हारे पास आया है।

यह सुन कर बंकिम बाबू एकाएक गंभीर हो गये। पूछा क्या काम ?

राजकृष्ण बाबू ने कहा . इसने एक लेख लिखकर पुरस्कार पाया है। 'बंग दर्शन' मे छपाने के लिए देना चाहता है।

बंकिमचन्द्र ने बुजुर्गयाना लहजे मे कहा : बंगला मे लिखना बड़ा कठिन है, विशेषकर संस्कृत वालो को। वह तो 'नद-नदी, पर्वत-कंदरा' ही लिखेंगे।

शास्त्री जी ने कहा · मेरे लेख के पहले पन्ने पर ही नद-नदी, पर्वत-कदरा है। पहले चार पन्नो मे और सबसे अत मे, मैने ऐसे ही लिखा है। किंतु भीतर और ही कुछ है।

तव वकिम वावू वोले . नंद के भाई ने वंगला लिखी है। राजकृष्ण उसे साथ लेकर आया है। जो भी हो, यह छापना ही होगा।

वाद मे, वंकिमचन्द्र ने उस लेख की वहुत प्रशसा की। कहा · नद के भाई ने वहुत अच्छी वंगला लिखनी सीख ली है।

और जव शास्त्री जी उनसे फिर मिलने गये तो पूछा : तुमने ऐसी सुन्दर वगला लिखनी कैसे सीखी ?

शास्त्री जी ने कहा · मै श्रीयुत श्यामचरण गागुली का शिष्य हू।

उसके वाद से वकिमचन्द्र शास्त्री जी के लिए बुजुर्ग नही रह गये।

इस प्रकार वकिमचन्द्र लोगों को वगला लिखने के लिए प्रेरित करने लगे और 'वग दर्शन' को केंद्र वना कर लेखको का एक समूह तैयार हो गया।

वकिमचन्द्र अग्रेजी के शत्रु नही थे। वह मानते थे कि अग्रेजी की आवश्यकता है, लेकिन सभी तो एकदम

अंग्रेज नही हो सकते ! यदि तीन करोड़ बगाली एकदम तीन करोड़ अग्रेज बन जाये, तो दूसरी बात है। लेकिन ऐसा तो हो नही सकता। अंग्रेजी हमारे लिए मरे सिह के चमड़े के समान ही रहेगी। पांच सात हजार नकली अंग्रेज हो सकते है। तीन करोड साहब नही हो सकते। जब तक सुशिक्षित बगाली बगला भाषा मे लिखते-बोलते नही, तब तक बगालियों की उन्नति नही हो सकती। वे यदि यह समझते है कि पढे-लिखों की बात पढे-लिखे लोग ही समझे, वह सब के लिए नही है, तो वे भ्रान्त है। सब बंगालियो की उन्नति न होने पर देश का मगल नही हो सकता। सारे देश के लोग अंग्रेजी कभी समझेंगे, ऐसी आशा भी नही की जा सकती। इसलिए जो वात बंगाली भाषा मे नही कही जायगी उसे तीन करोड़ बगाली न कभी समझेंगे, न कभी सुनेंगे। आज नही सुनते, भविष्य मे भी कभी नही सुनेंगे। यदि वगाली लोग वगला भाषा का अनादर करेंगे तो उनका अनादर होगा।

'वग-दर्शन' निकालने का उनका दूसरा उद्देश्य यह था कि वगालियो मे ज्ञान का प्रचार हो। वह इस पत्र को विद्वानो के लिए नहीं, जनता के लिए निकालना चाहते थे। वह मानते थे कि केवल सरल भापा लिखने

से ही काम नही चलता, सुशिक्षित व्यक्तियों के पढ़ने योग्य सामग्री भी होनी चाहिए। सामग्री यदि ठीक है तो, जो उसे समझ नही पाते, वे भी समझने की चेष्टा करेगे। इसी तरह जनता में शिक्षा का प्रचार होगा।

'वग-दर्शन' का जन्म अप्रैल सन् १८७२ में हुआ। वगला साहित्य के इतिहास मे यह एक अमर घटना है। घर-घर मे उसका प्रवेश था। बड़ी उत्सुकता से लोग उसकी वाट देखते थे। रवीन्द्रनाथ ने लिखा है—"वकिम के 'वग-दर्शन' ने वंगाली हृदय को पूर्ण रूप से जीत लिया।" इस पत्रिका में ज्ञान, दर्शन, धर्म, साहित्य, सस्कृत काव्य, समाज तत्व, इतिहास, अर्थ-नीति, संगीत, भाषा-विज्ञान, पुस्तक समालोचना—सव कुछ रहता था। इन सब विषयों पर वे रचनाए लिखवाते थे। उनमें सशोधन करते थे। यहां तक कि कभी-कभी तो उन रचनाओं को फिर से लिखते थे।

उनके अपने उपन्यास भी उसी में प्रकाशित हुए। उन्होने पहली वार बताया कि दिन-प्रति-दिन के जीवन और समस्याओं को लेकर पढ़ने योग्य उपन्यास कैसे लिखे जा सकते है। लेकिन जितनी मेहनत वह करते थे और जैसा उनका स्वास्थ्य था, उसको देखते हुए यह काम वहुत दिन नही चल सकता था। चार वर्ष वाद उन्होंने

यह काम छोड दिया। लेकिन दूसरा कोई उसे संभाल नही सका। दो वर्ष तक 'बग-दर्शन' बद रहा। फिर छ वर्ष तक उनके बडे भाई सजीवचन्द्र ने उसका सम्पादन किया। इसी समय उनके प्रसिद्ध उपन्यास इसमें प्रकाशित हुए। 'कृष्णकान्त का वसीयतनामा' और 'आनन्दमठ' उनमें विशेष रूप से प्रसिद्ध हुए।

हास्यरस की रचना 'कमलाकान्त का दफ्तर' इसी समय 'बग-दर्शन' में प्रकाशित हुई। यह रचना भी स्वदेश प्रेम और देशभक्ति से भरी हुई है। शुरू मे इसका उदाहरण हमने दिया है। वह कैसे लिखी गयी थी, इसकी भी एक कहानी है। एक बार 'बग-दर्शन' मे एक लेख की कमी रह गयी। सजीवचन्द्र परेशान थे। एकदम रचना कहां से पाये। बकिमचन्द्र को पता लगा। कचहरी जाने का समय हो रहा था। वह तुरन्त ऊपर गये और कचहरी जाने से पूर्व उन्होंने 'कमलाकात की जबानवन्दी' नाम का लेख आधा लिख कर तैयार कर दिया। आधा दूसरे दिन लिख दिया। ऐसा शक्तिशाली व्यग्य वह इतनी जल्दी इसीलिए लिख सके कि वह उस जीवन को रोज पास से देखते थे।

कभी-कभी तो ऐसा होता था कि मुकदमा सुनते-सुनते उन्हे कुछ विचार सूझ जाते, तव वह मुकदमा रोक

कर अन्दर चले जाते। उन विचारों को लिखते और फिर आकर कचहरी के काम मे लग जाते।

'वग दर्शन' को फिर से निकालने के लिए उनके मित्रों ने वार-वार आग्रह किया। उत्तर मे उन्होने जो कुछ कहा उससे उनकी मानसिक पीड़ा और उनके चिन्तन की दिशा का पता लगता है। वह वोले: 'वग दर्शन' वन्द करने से तुम लोगो को वडा दुख हुआ है। दुख होने की वात ही थी। किन्तु क्या किया जाय। मैं एक तो अपनी दासता से परेशान हू। फिर स्वास्थ्य और मेहनत करने की भी एक सीमा होती है। 'वग दर्शन' का लगभग तीन-चौथाई भाग मुझे ही लिखना पडता था। उतना काम मैं और नही कर सकता। इसके अतिरिक्त मैंने उसमें जो निरपेक्ष समालोचना की, उससे लोग मेरे शत्रु हो गये। सुना जाता है कि कोई-कोई लेखक मुझे मार डालने तक के लिए तैयार हो गया था। गाली-गलौज की तो कोई सीमा नही। ऐसा लगता है, सर जार्ज कैम्वल के वाद मै ही ऐसा व्यक्ति हूँ जिसे सवसे ज्यादा गालिया दी जाती हैं। तुम लोग 'वंग दर्शन' निकालना चाहते हो, निकालो। लेकिन मैं उसका सम्पादक नही हो सकता।

पुस्तक के शुरू में हमने राष्ट्रगीत 'वन्दे मातरम्' की चर्चा की है। यह गीत भी उन्होने सन् १८७५ के

आसपास ही लिखा था। उस समय वह 'वंग दर्शन' का सम्पादन कर रहे थे। 'आनन्दमठ' में तो वह वहुत वाद में शामिल किया गया। एक वार ऐसा हुआ कि 'वंग दर्शन' में सामग्री की कमी पड गयी। कर्मचारी के सूचना देने पर वकिमचन्द्र ने कहा अच्छा, आज लिख दूगा।

मेज पर कागज रखा हुआ था। कर्मचारी ने उसे देख कर कहा, इतनी सामग्री से काम चल जायेगा। इसी को आप दे दीजिए।

सम्पादक वकिमचन्द्र ने उस गीत को उठा कर दराज मे वन्द कर दिया और विरक्त होकर कहा :

"यह गीत अच्छा है या वुरा यह तुम अभी नही समझोगे। कुछ समय वाद समझोगे। शायद तव मै जीवित नही रहूँगा। शायद तुम रहोगे।"

नही मालूम, उन्होने यह भविष्यवाणी जानवूझकर की थी या नही, लेकिन वह पूरी तरह सच हुई। 'वन्दे मातरम्' का महत्व आज सभी जानते हैं।

उनके उपन्यासो में 'आनदमठ' और 'देवी चौध-रानी' वहुत प्रसिद्ध हुए। इन दोनो मे भी 'आनदमठ' का स्थान सवसे ऊपर है। कला की दृष्टि से ये उपन्यास वहुत अच्छे नही है, इनका मूल्य देश और राष्ट्र की

भक्ति के कारण ही अधिक है। 'आनदमठ' के सत्यानद और 'देवी चौधरानी' के भवानी पाठक बहुत बड़ा आदर्श सामने रखकर काम करते है। इन दोनों में जिस प्रकार की देशभक्ति, राजनीतिक दूरदृष्टि और संगठन-शक्ति दिखाई देती है, वह देखने मे पुराने युग की मालूम देती है। लेकिन वास्तव मे बंकिमचन्द्र उसी के द्वारा लोगों के सामने एक आदर्श प्रस्तुत करते हैं। उन्होने इतिहास की आड़ लेकर पराधीन भारत के सामने देशभक्ति का आदर्श रखा।

उनके सामाजिक उपन्यासों में 'विष-वृक्ष' और 'कृष्णकांत का वसीयतनामा' सर्वश्रेष्ठ है। इनमे उन्होंने उस काल के समाज और पारिवारिक जीवन का मार्मिक चित्र खीचा है। 'राजसिह' एक ऐतिहासिक उपन्यास है। लेकिन इसमे केवल ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन ही नही है, बल्कि लेखक ने उसको नया रूप देकर नये परिवेश में पाठक के सामने पेश किया है। उनके दूसरे उपन्यास 'दुर्गेशनन्दिनी', 'कपाल कुण्डला', 'मृणालिनी' आदि न तो ऐतिहासिक है, न सामाजिक। उनमे इतिहास भी है, परिवार की कहानी भी और कल्पना भी। वे आदर्शवादी है, पाप से उन्हे एकदम घृणा है।

वंकिमचन्द्र के लिए काव्य का उद्देश्य 'चित्त शुद्धि' था। उन्होने कहा है—"जो लोग बुरे काव्य का निर्माण करते है और दूसरे के मन को कलुषित करने की चेष्टा करते हैं। वे चोरों के समान मनुष्य जाति के शत्रु हैं। उन्हे चोरों की तरह ही शारीरिक दण्ड दिया जाना चाहिए।"

उपन्यासो के अतिरिक्त उन्होने 'धर्म' के बारे में भी लिखा। 'धर्म तत्व' उनकी प्रसिद्ध पुस्तक है। लेकिन उनका धर्म सकीर्ण नही है। वह जैसे जीवन मे उदार थे, उनका धर्म भी वैसा ही उदार था। उन्होंने साफ कहा, "मै ऐसा समझता हूँ कि जो धर्म शास्त्र मे है वही हिदू धर्म नही है। हिदू धर्म अतिशय उदार है। जिन ऋषियो ने स्मृतिया लिखी है, विशेषकर आधुनिक युग के स्मृतिकार रघुनन्दन आदि, उनके हाथो में पड कर यह बहुत ही सकीर्ण हो गया है। स्मृतिकार हिंदू धर्म के वनाने वाले नही हैं। हिदू धर्म सनातन है। उनसे वहुत पहले से वह चला आ रहा है। इसलिए सनातन धर्म मे और इस धर्मशास्त्र में विरोध असम्भव नही।...धर्म और हिन्दू धर्म में मै कोई विरोध स्वीकार नही कर सकता। धर्म के साथ हिन्दू धर्म का यदि कोई विरोध रहता है, तो हिन्दू धर्म का गौरव

क्या ? इसे सनातन धर्म कैसे कहा जायेगा । ऐसा कोई विरोध नही है । समुद्र यात्रा लोक-हितकर है । इसलिए धर्म से अनुमोदित भी है । धर्मशास्त्र मे जो कुछ भी लिखा हो, हिन्दू धर्म समुद्र यात्रा का अनुमोदन करता है ।"

श्रीकृष्ण के बारे में भी उन्होंने 'कृष्ण चरित्र' नाम की एक बहुत ही सुन्दर पुस्तक लिखी । इस पुस्तक में उन्होंने कृष्ण के ऐतिहासिक और पौराणिक रूप का विवेचन किया है । उन्होने बताया है—"जब से हम अपने आदर्श को भूल गये और हमनें कृष्ण चरित्र को अवनत कर लिया, तब से हमारी सामाजिक अवनति होने लगी । सब लोग जयदेव के (गीत गोविन्द) कृष्ण की नकल करने लगे । महाभारत के श्रीकृष्ण की किसी को याद नही रही ।

"प्रश्न यह है कि भगवान को हम क्या समझते है । यही कि वह बचपन मे चोर थे । दूध, दही, मक्खन चुरा कर खाया करते थे । जवानी में व्यभिचारी थे... प्रौढ़ावस्था में ठग और दुष्ट थे । धोखा देकर उन्होंने द्रोण आदि के प्राण लिये । क्या इसी का नाम मानव चरित्र है ? जो केवल शुद्ध है, जिससे सब प्रकार के पाप दूर होते है, वही मनुष्य देह धारण करके पाप

करता है। पाप का आचरण करना ही क्या भगवत-चरित्र है?

"...पुराणों और इतिहास में भगवान श्रीकृष्ण-चन्द्र का ऐसा वर्णन किया गया है—यह जानने के लिए मैंने जहा तक बना इतिहास और पुराणों को खूब पढ़ा है। इसका फल यह हुआ कि श्रीकृष्ण के बारे में जो पाप कथाए चल पड़ी है, वे मुझे झूठी मालूम पड़ती है। इन मनगढ़न्त बातों को निकाल देने पर जो कुछ बचता है वही अतिशुद्ध, परम पवित्र और अतिशय महान मालूम देता है।"

बकिमचन्द्र ने श्रीमद्भगवत गीता की व्याख्या करनी भी आरम्भ की थी। लेकिन उसे पूरा नही कर सके। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। उन्होने धर्म की चर्चा की, उपन्यास लिखे, कविता भी लिखी और हास्य रस की रचनाए भी लिखी।

'कमलाकात का दफ्तर' की चर्चा शुरू में हो चुकी है।

'लोकरहस्य' भी एक ऐसी ही रचना है। उनका हास्य निर्मल तो है ही, सार्थक भी बहुत है। उसके द्वारा उन्होने समाज पर व्यग्य किया है। उसमे भी उनकी राष्ट्र-भक्ति चमकती है। सरकारी दफ्तरों की हालत जैसी आज है, वैसी ही तब थी। कुछ अधिक

खराव ही थी। उस पर व्यग्य करते हुए उन्होने 'मुचिराम गुडेर' आत्मचरित्र लिखा। इससे शासक लोग वहुत प्रसन्न नही हुए। उस समय वह वंगाल सरकार के असिस्टेण्ट सेक्रेटरी थे। सरकार ने उन्हे फिर से डिप्टी मजिस्ट्रेट वनाकर अलिपुर भेज दिया।

वकिम वावू ने वहुत कुछ किया, लेकिन सवसे वढ़कर वगाल को उन्होने भापा दी। पण्डितों की भापा को जनता की भाषा मे वदला। 'वंग दर्शन' की स्थापना के समय से लेकर उन्होने वोलचाल की भाषा का ढग मिलाकर और वाक्यो के विस्तार को घटाकर, उन्हे छोटा करके, भाषा को सरल और अधिक सहज वनाया। उनकी मान्यता थी कि पण्डितों की भाषा मे विद्वता प्रकट हो सकती है, पर जनता को स्वर नही मिल सकता। हमें ऐसी भापा की आवश्यकता है जिसमे सस्कृत की शक्ति, महानता और सौन्दर्य हो तथा देशी भाषा का ओज हो।

'बंग दर्शन' के प्रकाशन से लेकर अपनी मृत्यु तक बंकिमचन्द्र बगला साहित्य के सूक्ष्म और मार्मिक समालोचक बने रहे। उनके हाथ से कोई भी राजदण्ड नही छीन सका। इतना बडा अधिकार किसी को नही मिला।

छः

वंकिम-युग मे राष्ट्रीयता धीरे-धीरे पनप रही थी। राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म हो चुका था।

वकिमचन्द्र के सारे साहित्य मे देशभक्ति और राष्ट्रप्रेम का स्वर सुनाई देता है। सिपाही-विद्रोह से पहले सरकारी कर्मचारी राष्ट्रीय कामों में योग दिया करते थे। लेकिन विद्रोह के बाद ऐसा करना सम्भव नही रहा। हां, वह ऐसी सभा-सोसायटियो के सदस्य अवश्य हो सकते थे।

इन दिनों कलकत्ता में ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन या भारत सभा इसी प्रकार के आदोलनो का सचालन करती थी। वकिम वावू सन् १८८३ में इस सभा के सदस्य वने। खुलना मे अत्याचार का दमन करते समय ही उनके मन में देश-प्रीति का उदय हुआ था। इससे ९ वर्ष पूर्व एक ऐसी घटना हो चुकी थी जिसने सारे वगाल को प्रभावित किया था।

१८७४ को जनवरी में वहरामपुर के कर्नल डाफिन नाम के एक सैनिक ने वकिमचन्द्र का अपमान

किया। उनमें आत्मसम्मान था। उन्होने डाफिन के विरुद्ध अदालत मे फौजदारी का दावा दायर कर दिया। इस पर डाफिन ने खुली अदालत मे उनसे क्षमा मागी। उस समय वगाली मात्र ने वकिमचन्द्र के अपमान को अपना अपमान माना था। डाफिन की क्षमाप्रार्थना से केवल वंकिमचन्द्र की ही नही, तमाम वंगालियो की मर्यादा की रक्षा हुई।

इस तरह की घटनाओ से उनका सम्मान तो वढ़ा ही, उनकी राष्ट्र-प्रीति भी वढ़ी।

सरकारी काम करते हुए उन्हे दुर्भिक्ष पीड़ितों में काम करना पड़ता था। किसानो का दु:ख और दुर्दशा उन्होने बहुत पास से देखे थे। उनको लेकर उन्होने 'वंगाल प्रदेश के किसान' नाम से एक लम्वा लेख लिखा था। वाद में और भी लेख लिखे। उनका सार यही है कि जव तक किसानो की उन्नति नही होती, तव तक सचमुच वग प्रदेश की उन्नति नही हो सकती।

अपने देश को वह इतना प्यार करते थे कि अपनी हास्यरस की रचना 'कमलाकान्त का दफ्तर' में भी उन्होने अपनी जन्मभूमि के गुण गाये। वह लिखते हैं :

"मै पहचान गया—यही है मेरी जननी जन्मभूमि। यही मृणमयी, मृत्तिका-रूपिणी, अनन्त रत्न भूपिता,

इस समय काल के गर्भ मैं समायी हुई है। उसकी रत्न मंडित दस भुजाए, दस दिशाओ में प्रसारित है। उनमें नाना आयुध-रूपो मैं नाना शक्तियां शोभित है। पदतल मैं शत्रु विमर्दित है: पदाश्रित वीर जन-केशरी शत्रु-निपीड़न मैं नियुक्त है। इस मूर्ति को अभी मै न देखूगा। आज न देखूगा, कल न देखूगा। कालस्रोत को पार किये बिना न देखूंगा। किन्तु एक दिन देखूगा। दिग्भुजा नाना प्रहारिणी, शत्रु मर्दिनी, वीरेन्द्र पृष्ठ विहारिणी, दक्षिण मैं लक्ष्मी भाग्यरूपिणी, बायी ओर वाणी-विद्या-विज्ञान मूर्तिमयी, साथ में बल रूप कार्तिकेय, कार्यसिद्धि-रूप गणेश, मैने उस कालस्रोत के बीच देखा इस सुवर्ण-मयी बग प्रतिमा को।

"आओ भाइयो! हम सब लोग इस अन्धकार कालस्रोत में कूद पडे। आओ, हम द्वादश कोटि भुजाओं से उस प्रतिमा को उठा कर छ करोड़ मस्तकों पर ढो लाये। आओ, अधकार से भय क्या है, वे जो नक्षत्र रह-रह कर जग रहे है, बुझ रहे है—वे राह दिखायेगे। चलो-चलो। असख्य बाहुओं के प्रक्षेप से इस काल-समुद्र को ताडित, मथित, व्यस्त करके हम लोग तैरने लगें—उस स्वर्ण प्रतिमा को माथे पर ढो लाये।"

'धर्म तत्व' नामक अपनी पुस्तक में भी वे स्वदेश को नही भूले। उन्होने लिखा :

"आत्मप्रीति, स्वजन-प्रीति, स्वदेश प्रीति, पशु प्रीति, दया––एक ही प्रीति में शामिल है। इनमे से भी मनुष्य की अवस्था का विवेचन करके स्वदेश प्रीति को ही सर्वश्रेष्ठ धर्म कहना चाहिए। सब धर्मो में श्रेष्ठ है स्वदेश प्रेम, यह मत भूलना।"

बंकिमचन्द्र ने जो कुछ भी लिखा है उसका सन्देश एक ही है। जन्मभूमि की उपासना, जन्मभूमि को माँ मानना, जन्मभूमि को प्यार करना, जन्मभूमि की भक्ति करना। उनके जैसा कार्य और किसी ने नही किया। इसीलिए वह मन्त्र द्रष्टा ऋषि हैं और वह मन्त्र है : 'वन्दे मातरम्।'

ऊपर हमने भारत-सभा की चर्चा की। उसकी स्थापना २५ जुलाई १८७६ को हुई थी। स्थापना के समय बंकिमचन्द्र सभा में उपस्थित नही थे। लेकिन उन्होने एक पत्र लिख कर अपनी सहानुभूति प्रकट की थी। लिखा था .

"विश्वास करता हूं कि इतने दिनो बाद ऐसी एक सभा की स्थापना होने जा रही है जो उचित

रूप से देश के जन-साधारण का प्रतिनिधित्व करने में समर्थ होगी।"

कांग्रेस की स्थापना सन् १८८५ में हुई। बहुत से लोगों का यह विचार था कि बंकिमचन्द्र उसके विरोधी है। इस सम्बध में बंकिमचन्द्र ने कहा है :

"कांग्रेस के प्रति मेरी सहानुभूति नही है—यह मैं कभी नही कह सकता। इसका उद्देश्य बहुत महान है—इस बारे मे भी किसी को सन्देह नही। किन्तु जिस प्रकार इसका काम हो रहा है, आज तक उसमें जन-साधारण का कोई योगदान नही हुआ। इसके सारे आन्दोलन क्षण-स्थायी और सारहीन मालूम होते है।... देश के साधारण लोगों को दूर और अन्धकार में रख कर कुछ थोडे से सुशिक्षित लोगो की इच्छा के अनुसार काम करने से इसका गौरव नही बढेगा और देश के लाखो व्यक्ति कभी भी इसकी आवश्यकता और महत्व को अनुभव नही कर पायेगे।"

उन्होने यह भी कहा कि मेरे विचार मे राजनीति के साथ-साथ समाजनीति के आन्दोलन भी सारे देश मे फैलने उचित है। उस युग मे ऐसी सच्ची वाणी कोई साधारण व्यक्ति नही बोल सकता था। बंकिमचन्द्र मानो भविष्यवाणी कर रहे थे।

सात

वंकिमचन्द्र आदर्शवादी थे। आदर्शवादी व्यवहार में कुछ कठोर होता है। वह विद्वान भी थे। विद्वान में थोड़ा वहुत अहंकार भी होता है। वकिमचन्द्र में ये दोनों वाते किसी न किसी रूप में थी। लेकिन इसका यह मतलव नही कि वह प्यार नही करते थे। मनुष्य वकिमचन्द्र सचमुच ही सरल और स्नेह करने वाले थे। वह जिसे प्यार करते थे उसे तो करते ही थे, अपरिचितो को भी खूव प्यार करते थे। चारो भाइयों में छोटे-बड़े के भेद-भाव के विना ऐसा प्यार था, जैसा मित्रों में भी न हो।

और, मित्र तो दीनवन्धु से वढ़कर कभी कोई होगा ही नही। वे दोनों मानो दो शरीर एक प्राण थे। दीनवन्धु उनके सामने ही परलोकगत हो गये थे। उसके बाद वंकिमचन्द्र उनकी कभी चर्चा नही करते थे। कोई दूसरा करता तो झट विपय वदल देते थे। उस शोक को वे जीते जी कभी दूर नही कर सके।

अपरिचित के प्रति विनय, सद्भाव और स्नेह की उनमें कभी कमी नही हुई। एक बार एक युवक उनसे मिलने के लिए आया। उसने चाहा कि वह उनके चरण छू सके। उस दिन विजयदशमी थी। प्रणाम करने का एक विशेष अवसर था। लेकिन बंकिमचन्द्र ने अपने पैर पीछे हटा लिये।

युवक ने कहा · आज विजयदशमी है। मै हिन्दू रीति के अनुसार आपकी पगधूलि चाहता हूँ।

वकिमचन्द्र बोले . विशेष आत्मीय और गुरुजनों के अलावा किसी के चरण छूना अच्छा नही।

युवक ने कहा : क्या सचमुच आपके चरण छूने का मुझे अधिकार नही है ? बेशक विद्यालय मे आपसे शिक्षा पाने का मुझे अवसर नही मिला, किन्तु घर में बैठ कर आपकी अनेक पुस्तकों से जो शिक्षा मैंने पायी है उसे क्या मै कभी भूल सकूगा ? आपके 'चन्द्रशेखर' और 'प्रताप' मेरे निकट देवताओं की तरह पूज्य है। आपके 'आनन्दमठ' से मैंने स्वदेश-भक्ति की शिक्षा पायी है। इसलिए आपकी चरण धूलि लेना मेरा अधिकार है।

यह सुन कर वकिमचन्द्र ने अपने दोनो चरण आगे वढा दिये।

बोले : यह लो। मैने जुर्राब पहन रखी थी, अभी उतारी है, इसलिए तुमको चरण धूलि तो नही मिलेगी।

युवक ने उनके चरण छुये। वकिमचन्द्र ने गद्गद् होकर उसे छाती से लगा लिया। कहा . मेरे पैरों की धूलि तुम्हारे मस्तक पर जरा भी नही लगी। लेकिन सचमुच ही तुम्हारे माथे पर कही और से धूल लग गयी है। लाओ उसे झाड़ दू।

यह कह कर वह वड़े स्नेह से उस युवक को छाती से लगाये-लगाये उसके सिर पर हाथ फेरने लगे। वह युवक महात्मा प्यारी चाद मित्र की जीवनी लिख रहा था। उन्होने उसे मित्र महाशय के सम्बन्ध मे बहुत सी बाते वतायी। पुस्तक को देख कर सशोधन कर दिया। इतना ही नही, पुस्तक की एक सुन्दर भूमिका भी लिख दी।

यह केवल एक युवक की कहानी नही है, सभी के प्रति उनके मन मे स्नेह था। अपने एक चिरजीव को नौकरी मिलने के अवसर पर सात वाते उन्होंने वतायी थी। युवक जीवन मे किस प्रकार सफलता प्राप्त कर सकते है, ये बाते उसकी ओर इशारा करती है।

क्या आप भी उन बातों को जानना चाहते है ? अच्छा सुनिए—

१—सत्य के अलावा झूठ के रास्ते पर कभी न चलो। कलम से कभी झूठी बाते न लिखो। ऐसा होनें पर अविश्वास पैदा होता है और अविश्वास होने पर उन्नति नही हो सकती।

२—विना परिश्रम के उन्नति नही होती।

३—अपने से वडो के प्रति विनीत रहना चाहिए। तर्क नही करना चाहिए।

४—जहा नौकरी करते हो, वहां के नियम अच्छी तरह जानने चाहिए।

५—किसी पर कभी अत्याचार नही करना चाहिए। पुलिस वाले वडा अत्याचार करते है। वहुत लोगों का विश्वास है कि ऐसा न करने से काम नही चलता। यह भ्रांति है। न चले, यही अच्छा है। अपने आप भी अत्याचार नही करना और अपने नीचे जो काम करते है, उनको भी न करने देना।

६—सवके साथ सद्व्यवहार करना चाहिए। नीचे काम करने वाले अच्छे व्यवहार से ही अपने वश में होते है। किसी से शत्रुता नही करनी चाहिए।

हो, जहां तक कर्तव्य का सम्बध है, वहां बहुतों का अनिष्ठ हो ही जाता है। अगर उनका दोष है तो उन्हे दण्ड देना ही चाहिए।

७—बिना कारण कभी नही डरना चाहिए।

नौकरी से अवकाश प्राप्त करने के बाद बंकिमचन्द्र स्थायी रूप से कलकत्ता आकर रहने लगे। उन्होंने अपने कई उपन्यासों को फिर से लिखा और उचित संशोधन किये। उन्होने अपने बड़े भाई संजीवचन्द्र की रचनाओं का संकलन भी किया, और 'सजीवनी सुधा' के नाम से प्रकाशित किया। उनकी जीवनी भी लिखी। 'सहज रचना शिक्षा' और 'सहज अंग्रेजी शिक्षा' इसी समय प्रकाशित हुई। सेन्ट्रल टेक्स्ट बुक कमेटी की 'अंग्रेजी भाषा और साहित्य' तथा 'बंगला भाषा और साहित्य' के सम्बंध मे जो उप-समितियां थीं, उनके यह सदस्य थे। यूनिवर्सिटी इन्स्टीच्यूट, जिसका नाम 'सोसायटी फॉर हायर ट्रेनिंग ऑफ यगमेन' था, के भी वह सदस्य थे। इसके साहित्य विभाग के वह सभापति थे। उन्होने यह प्रयत्न भी किया कि कलकत्ता विश्वविद्यालय मे बंगला भाषा में भी परीक्षा ली जाय।

आठ

वंकिमचन्द्र का स्वास्थ्य बहुत अच्छा नही था। नौकरी से मुक्ति पाकर वह पूरे तीन वर्ष भी नही जी सके।

१४ सितम्बर १८९१ को उन्होने अवकाश ग्रहण किया और ८ अप्रैल १८९४ को उनका देहावसान हो गया।

उनके कोई पुत्र नही था। तीन कन्याए थी—शरत कुमारी, नीलाक्ष कुमारी और उत्कल कुमारी। उनकी पत्नी राज्यलक्ष्मी देवी, उनकी मृत्यु के पश्चात कई वर्षो तक जीवित रही।

मृत्यु के समय वकिमचन्द्र ५६ वर्ष के भी नहीं थे।

दासता के कारण मानसिक वेदना। घोर परिश्रम के कारण विगडा हुआ स्वास्थ्य। इन्ही कारणो से उन्हें इतनी जल्दी इस ससार से चले जाना पडा। उनकी मृत्यु से वगाल मे शोक छा गया। कवियों ने उनकी

प्रशंसा मे गीत गाये। राष्ट्र नेताओं ने उनका गुणगान किया।

वकिमचन्द्र की मृत्यु के १२ वर्ष के भीतर ही बगाल मे स्वदेशी आदोलन का नया रूप उदित हुआ। इसका कारण वंकिमचन्द्र का साहित्य था—यह वात सभी ने स्वीकार की है।

वंकिमचन्द्र ने ८१ वर्ष पहले महान गीत 'वन्दे मातरम्' की रचना की थी। इस गीत ने हमें स्वाधीनता के मार्ग पर आगे वढ़ने की प्रेरणा दी, उत्साह दिया। एक ही दिन मे मानो सारी जनता ने देशभति के धर्म को स्वीकार कर लिया।

वकिमचन्द्र आज हमारे वीच मैं नही है, लेकिन उनका उद्देश्य सार्थक हो चुका है, उनका मंत्र भी सार्थक हुआ है। भारत आज स्वाधीन है। वही स्वाधीनता उनका स्मारक है। उसकी रक्षा करना उनका सम्मान करना है।

